केरल ज्योति

अगस्त 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

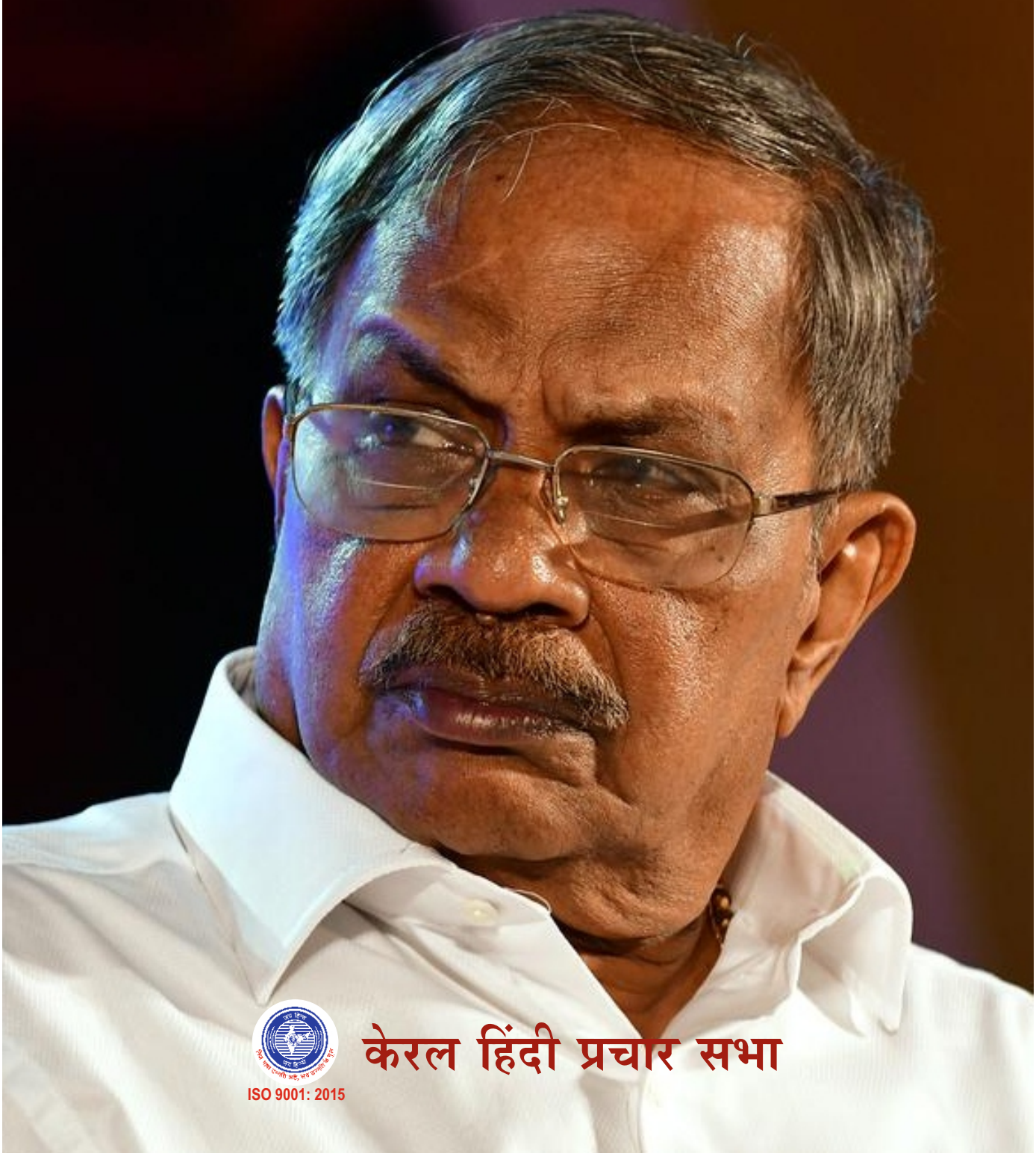

केरल हिंदी प्रचार सभा

ISO 9001: 2015

पुरस्कार वितरण समारोह का उद्घाटन
केरल की उच्च शिक्षा मंत्री
डॉ.आर.बिंदु कर रही हैं।

मंत्री भाषण दे रही हैं।

मलप्पुरम जिले में सुगम हिन्दी पुरस्कार वितरण समारोह का उद्घाटन
मलयालम विश्वविद्यालय की कुलपति डॉ.एन.सुषमा कर रही हैं।

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

केरल हिंदी प्रचार सभा के संस्थापक

स्व. के वासुदेवन पिल्लै

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 61 दल : 5 अंक: **अगस्त 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

वरिष्ठ साहित्यकार एम.टी. वासुदेवन नायर जी को 'साहित्य कलानिधि पुरस्कार' **अधिवक्ता (डॉ) मधु.बी** 6

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य - **प्रो.डी.तंकप्पन नायर** 7

आरोहण.... अवरोहण... - **प्रो.(डॉ)प्रभाकरन हेब्बार इल्लत** 10

मानस कैलास - **मूल : मंजु वेल्लायणि**
अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम 15

प्रश्नोत्तरी - **डॉ.रंजीत रविशैलम** 16

कहानी का नाट्यरूपांतरण (रूपांतरित नाटक 'ठाकुर का कुआं' के विशेष संदर्भ में) - **डॉ.राखी क्लेमन्ट** 17

उत्तर केरल के पुलयर और तेय्यम - **डॉ.सूर्या बोस** 21

मोची (कविता) - **डॉ. अंबिली.टी** 24

समकालीन असमिया उपन्यास 'इयत एखन अरण्य आसिल' में पारिस्थितिक चिंतन - **सागर छेत्री** 25

'कड़ियाँ' उपन्यास में नारी चेतना - **डॉ.माजिदा.एम.** 29

किरण अग्रवाल की 'रुकावट के लिए खेद हैं' में चित्रित नारी समस्याएँ : एक अध्ययन - **डॉ. राजेष कुमार.आर** 32

कैलाशनाथ आधुनिक समाज के लिए एक मिसाल- 'अभिमन्यू चक्रव्यूह में' नाटक के आधार पर एक समीक्षा
अरुण मोहन.एम.आर 34

सुशीला टाकभौरे की कहानियों में दलित नारी की अभिव्यक्ति
अरुणिमा.ए.एम 37

अन्या से अनन्या की अनन्यता
डॉ. मेर्ली के. पुन्नूस 40

परशुराम शुक्ल की लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ : एक अध्ययन - **हुमैरा यूसुफ़** 43

देवयानम् (आत्मकथा)
मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना 48

ज़िंदगी : एक लोलक (आत्मकथा) 50
मूल : श्रीकुमारन तंपी अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

मुखचित्र : वरिष्ठ साहित्यकार एम.टी. वासुदेवन नायर जी

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडीः khpsabha12@gmail.com। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : संपादक : 7898515222

E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.in

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
अगस्त 2024

संपादकीय

'एम.टी.' को साहित्य कलानिधि पुरस्कार

केरल हिंदी प्रचार सभा कला, साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र के अतिविशिष्ट एवं प्रतिष्ठित मनीषियों का सम्मान सभा द्वारा आयोजित एक भव्य सम्मेलन में 'साहित्य कलानिधि' पुरस्कार देकर करती है और गत वर्षों में यह पुरस्कार महान यशस्वी साहित्यकारों को दिया गया। इस साल इस पुरस्कार के लिए भारतीय साहित्य जगत के यशस्वी मनीषी श्री एम.टी वासुदेवन नायर को देने का निर्णय सभा द्वारा लिया गया है जिसके लिए वे सर्वथा योग्य हैं। उनकी रचनाओं में भावों एवं कल्पनाओं के आलोक के साथ समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं का तरल स्पर्श गहरी संवेदनशील अंतरदृष्टि के साथ मिलता है। वे 'एम.टी' संक्षिप्त नाम से सर्वत्र जाने जाते हैं। वे अनेक पुरस्कारों से नवाजे गए हैं जैसे ज्ञानपीठ पुरस्कार, एषुत्तच्छन पुरस्कार, प्रथम केरल ज्योति पुरस्कार, केरल विधान सभा पुरस्कार आदि।

अपने परिवेश के प्रति निरंतर जागरूकता एवं सबल सामाजिक चेतना के तत्त्व उनके पाठकों को उनके युग से जोड़ने में सहज सक्षम सिद्ध होते हैं। बहुमुखी प्रतिभा के धनी एम.टी.ने अपने अपूर्व व्यक्तित्व की छाप साहित्य की विविध विधाओं में छोड़ी है। कहानी, उपन्यास, पटकथा, नाटक जैसी विधाओं में विधा के प्रति आपकी निष्ठा और रचनाओं में विषय की गहराइयों तक पहुँचने की लगन श्लाघनीय है। विस्तार के भय से उनकी रचनाओं के नामों का विवरण देना समीचीन नहीं लगता। यह सच है कि एम.टी आधुनिक भारतीय साहित्य क्षेत्र में एक अनूठे शिखर हैं। केरल ज्योति परिवार उनकी इस नवीन पुरस्कारलब्धि पर गर्व एवं हर्ष का अनुभव करता है। यह महान साहित्यकार नोबेल साहित्य पुरस्कार के लिए भारत वर्ष से नामित किए जाने के लिए सर्वथा योग्य हैं। हम सब उनके अच्छे स्वास्थ्य एवं चिरायु होने की प्रार्थना करें।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

वरिष्ठ साहित्यकार एम.टी. वासुदेवन नायर जी को 'साहित्य कलानिधि पुरस्कार'

अधिवक्ता (डॉ) मधु.बी

वर्ष 2024 का साहित्यकलानिधि के लिए पुरस्कार के लिए विशिष्ट एवं ख्यातिप्राप्त साहित्यकार श्री एम.टी. वासुदेवन नायर जी की घोषणा करने में असीम आनंद का अनुभव करता हूँ। पुरस्कार निर्णय समिति ने 'एकस्वर' में आपके नाम का चयन किया था। दरअसल सुधी पाठकों को बताना चाहता हूँ कि 'साहित्यकलानिधि पुरस्कार' केरल हिंदी प्रचार सभा द्वारा प्रदत्त सबसे श्रेष्ठ पुरस्कार है। आगे मैं पुरस्कृत व्यक्तित्व का परिचय संक्षिप्त रूप में दे रहा हूँ।

श्री एम.टी. वासुदेवन नायरजी मलयालम साहित्य के महान स्तंभ हैं। पिताश्री श्री तेंड्यत्त नारायणन नायर एवं माताश्री अम्मालु अम्मा के कनिष्ठ पुत्र के रूप में आपका जन्म 15 जुलाई 1933 को पुन्नयूरकुलम में हुआ। श्री एम.टी. वासुदेवन नायर जी को पूर्ण नाम है माटत्तु तेक्केपाट्ट वासुदेवन नायर है जिन्हें लोग प्यार से एम.टी के नाम से पुकारते हैं। पत्नी व पुत्री समेत आप कोषि़क्कोड के रारिच्चन मार्ग में स्थित 'सितारा' में रहते हैं। कोप्पन मास्टर जी के शाला विद्यालय में आपने अपना विद्यारंभ किया था। वहाँ से फिर मलमक्काव एलिमेंटरी विद्यालय, कुमारनल्लूर हाइस्कूल में स्कूली शिक्षा पूर्ण की। तदनंतर पालक्काट विक्टोरिया कॉलेज में उच्चशिक्षा प्राप्त की। विषय रसायन विज्ञान था। बाद में नौकरी करने के उपलक्ष्य में पट्टांबी बोर्ड हाइस्कूल चले फिर चावक्काड बोर्ड हाईस्कूल में अध्यापक रहे। वहाँ गणित के अध्यापक रहे। स्कूल में पढ़ते समय से साहित्य सर्जना करने लगे। कॉलेज में अध्ययन करते समय में 'जयकेरलम्' मासिक में कहानियाँ छप गई थीं। विक्टोरिया कॉलेज में स्नातक करने के दौरान 'रक्तम् पुरंटा मणलतरिकल' नामक उनका पहला कथा संग्रह प्रकाशित हुआ। सन् 1954 में न्यूयॉर्क हेराल्ड ट्रिब्यून द्वारा आयोजित विश्वकहानी प्रतियोगिता के अवसर पर रचित 'वलर्त्तुमृगंगल' नामक कहानी प्रथम स्थान प्राप्त किया। इस घटना के बाद एम.टी. का नाम साहित्य में गूँजने लगा। इसी समय ही 'पातिरावुम पकलवेलिच्चवुम' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। लेकिन पुस्तक रूप में छपा प्रथम उपन्यास है 'नालुकेट्ट' (1938)। प्रथम कृति को ही केरल साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

सन् 1963-64 के दौरान अपनी ही कहानी 'मुरप्पेण्णु' की पटकथा लिखकर सिनेमा के लोक में आलोकित हो गए। सन् 1973 में निर्माल्य हेतु पहली बार निदेशन हेतु स्वर्ण पतक मिला। पचास से अधिक पटकथाएँ उन्होंने रची है। अनेक ग्रंथों में 'कालम' (केंद्र साहित्य अकादमी पुरस्कार), रण्डामूष़म (वयलार पुरस्कार), वानप्रस्थम (ओटक्कुष़ल अवार्ड), वारणासी, मञ्जु आदि अनेक मौलिक रचनाएँ उनके द्वारा प्रकाशित हैं। कटवु, ओरु वटक्कन वीरगाथा, सदयम्, परिणयम इत्यादि चलचित्रों को राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। सन् 2005 के मातृभूमि पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त है। 'सिनेमा' के लिए जे.सी.डानियल पुरस्कार सहित तमाम पुरस्कार उन्हें प्राप्त है। भारतीय वाङ्मय को एम.टी की देन को मद्दे नज़र रखते हुए सन् 1995 का सर्वोच्च पुरस्कार ज्ञानपीठ पुरस्कार उन्हें प्राप्त हुआ। मलयालम साहित्य एवं संस्कृति को दिए हुए प्रदेयों के कारण सन् 1996 को कालिकट विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डी.लिट' प्रदान किया। सन् 2005 में पद्मभूषण प्रदान कर भारत सरकार ने इस महान व्यक्तित्व का यथोचित सम्मान किया। केरल सरकार ने 'केरल ज्योति' प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया। इनकी रचनाएँ अनेक विश्व भाषाएँ एवं अन्य भारतीय भाषाओं में अनूदित हुई हैं। 'मातृभूमि आष्व़पतिप्पु' के संपादक, केरल हिंदी साहित्य अकादमी के अध्यक्ष आदि रूपों में सेवाएँ दीं और सन् 1993 से तुंचत स्मारक समिति के अध्यक्ष है।

उनकी सेवाएँ आज भी आपकी नवति पार स्थिति में भी हमें प्राप्त हो रही हैं। आज भी आप लेखनादि कार्य में सक्रियता से जुडकर केरल को ही नहीं समूचे भारतवर्ष को गौरवान्वित कर रहे हैं। ऐसे उत्कृष्ट व्यक्तित्व के धनी श्री एम. टी वासुदेवन नायरजी को केरल हिंदी प्रचार सभा का सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार 'साहित्यकलानिधि पुरस्कार' प्रदान करते हुए समस्त केरल हिंदी प्रचार सभा परिवार आपका अभिनंदन कर रहा है। सर्वशक्तिमान ईश्वर से आग्रह है आप स्वस्थ-व्यस्त और चिरायु रहें।

मंत्री, केरल हिंदी प्रचार सभा

श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य

प्रो.डी.तंकप्पन नायर

डॉ.जी.गोपीनाथन — **डॉ.रंजीत रविशैलम**

समर्पण

'श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य' समर्पित है मेरे अपने प्रियजनों डॉ.जी.गोपीनाथन और डॉ.रंजीत रविशैलम को। रविशैलम ने ही इस महाकाव्य को रचने हेतु मुझे प्रेरणा दी और पुत्रवत् प्यार सहित प्रोत्साहन निरन्तर देता रहा जिससे मेरा आत्मविश्वास बढ़ा और मैं रचना-प्रक्रिया में मग्न हुआ। रचना के दौरान गोपीनाथन जी द्वारा श्रीनारायण गुरु पर रचित कृतियाँ मेरे लिए अवलंब बनीं। इनमें उनकी चर्चित कृति 'श्रीनारायण गुरु: आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत' विशेषत: उल्लेखनीय है।

यह सच है कि गोपीनाथन जी की रचनाओं के अवलंब के बिना इस महाकाव्य की रचना मेरे लिए संभव नहीं हो पाती। आधुनिक भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक नवजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले श्रीनारायण गुरु के प्रति मेरे मन में जो श्रद्धा-भक्ति है उसका परिणाम ही यह महाकाव्य है।

मैं आदरणीय डॉ.जी.गोपीनाथन को और स्नेही डॉ.रंजीत 'रविशैलम' को यह कृति सप्रेम समर्पित करता हूँ।

भूमिका

प्रो.डी.तंकप्पन नायरजी साहित्य के एक ऐसे मौन साधक और सहृदय पाठक हैं जिनकी कलम से अनेक अनूदित रचनाएँ हिंदी और मलयालम में निकली हैं। लंबे समय से 'केरल ज्योति' के संपादक के रूप में रहकर उन्होंने हिंदी और मलयालम साहित्य को एक दूसरे के करीब लाने में महती भूमिका अदा की है। हिंदी के लिए उनका सबसे ताज़ा योगदान है 'श्रीनारायणगुरुचरित महाकाव्य'। यह रचना प्रो.जी.गोपीनाथन द्वारा लिखित 'श्रीनारायण गुरु आध्यात्मिक क्रांति के अग्रदूत' शीर्षक गुरुदेव की गद्य जीवनी से प्रेरणा पाकर सर्जित महाकाव्य है। तंकप्पन नायर जी की संक्षेपण कला एवं प्रांजल पद्यात्मक अभिव्यक्ति के कारण यह महाकाव्य विशिष्ट बन गया है। उनका सूत्रात्मक अभिव्यक्ति कौशल इस काव्य रचना की सफलता का निदान है। सादगी, सुबोधता एवं चित्रात्मक गतिशील अभिव्यक्ति इस काव्य की विशेषताएँ हैं। श्रीनारायणगुरु के जीवन, उनके क्रान्तिकारी सामाजिक कार्यकलापों द्वारा केरल में लायी गयी पुनर्मानवीकरण की प्रक्रिया एवं गुरु की दार्शनिक मान्यताओं का प्रामाणिक परिचय पाठक को मिलता है। स्वामी विवेकानन्द के चिकागो भाषण के पाँच वर्ष पहले ही अवर्णों के लिए शिवलिंग की प्रतिष्ठा करते हुए गुरु जो ने आध्यात्मिक क्रांति का सूत्रपात किया उसका सम्यक विवेचन इस महाकाव्य में किया गया है। जातिभेद और धर्म विद्वेष के बिना जहाँ लोग भाईचारे से रहते हैं ऐसे आदर्श विश्व के निर्माण के सन्देश का काव्यात्मक अंकन इस काव्य की खूबी है। श्रीनाराणयगुरु के 'एक जाति', 'एक धर्म', एवं 'एक ईश्वर' के बारे में विचार एवं उनके द्वारा शिवगिरी तीर्थाटन के लिए सुझाये गये अष्टांग मार्ग की परिकल्पना पर नया प्रकाश डाला गया है। गुरु के आध्यात्मिक मानवतावाद की कलात्मक अभिव्यक्ति इसकी और एक खासियत है। तंकप्पन नायरजी का पद्यात्मक प्रस्तुतीकरण अत्यंत सरस एवं रोचक है और उसमें पाठक अनायास ही रम जाता है। मुझे पूरी आशा है कि एक केरलीय हिंदी कवि द्वारा रचित इस आधुनिक महाकाव्य का हिंदी जगत में सर्वत्र स्वागत होगा। आधुनिक भारत के महान ऋषि श्रीनारायणगुरु पर लिखित यह महाकाव्य लेखक की सहृदयता, गहरी श्रद्धा, आध्यात्मिक चेतना, गहन चिन्तन एवं हिंदी भाषा पर अधिकार का निदर्शन है। इस विशिष्ट महाकाव्य की रचना के लिए तंकप्पन नायरजी सभी हिंदी प्रेमियों की प्रशंसा और आदर के पात्र बन गये हैं। इस गरिमामय रचना के लिए उनको हमारी हार्दिक शुभकामनाएँ।

डॉ.के.एम.मालती
पूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष,
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
सरकारी आर्ट्स एन्ड साईन्स कॉलेज
कालिकट, केरल।

पहला सर्ग

जन्म और बाल्य

कहा गीता में भगवान कृष्ण ने कि जब जब
धर्म पड़ता है मंद और करता है घोर अधर्म
तब-तब करता हूँ मैं जन्मधारण अवनि में
करने साधुओं की रक्षा और विनाश दुष्टों का।

अवतरित होते हैं महापुरुष हर देश में समय-
समय पर करने दूर अत्याचार और अधर्म को
स्थापति करने समाज में न्याय व्यवस्था व शांति
और हुई यही बात ईश्वर का अपना देश केरल में।

बंटा था पहले केरल तीन प्रदेशों में तिरुवितांकूर,
कोच्ची, मलाबार नाम से और हुआ फिर एकीकरण
उन्नीस सौ उनचास जुलाई एक को तिरुवितांकूर और
कोच्ची का तब भी न हुआ साकार स्वप्न केरल राज्य का।

कालांतर में जब हुआ आविर्भाव भाषावार प्रांतों का
उन्नीस सौ छप्पन में नवंबर की प्रथम तिथि को हुआ विलय
मलबार का तिरुवितांकूर-कोच्ची से और हुआ साकार
लोगों का सपना और हुआ आविर्भाव केरल राज्य का।

तिरुवितांकूर की पूर्व राजधानी तिरुवनन्तपुरम बनी राजधानी
नव केरल की भी जहाँ हुई कायम केरल की विधान सभा
चौदह जिले हैं वर्तमान केरल राज्य के जो हैं अनुगृहीत
प्रकृति-सुषमा, अनुपम हरियाली और संतुलित जलवायु से।

संपन्न है केरल अनेक पुण्य नदियों, गिरियों, पहाड़ियों
और झीलों से जो करते हैं प्रदान न्यारी प्रकृति-छटा
बहुधा जुडा है केरल की नदियों के नामों से पुऩा या आर
शब्द जिनका अर्थ है नदी और प्रमुख हैं चार नदियाँ।

वे हैं पेरियार, भारतप्पुषा, पंपयार व चालियार और
कहते हैं भारतप्पुषा को निळा भी और पेरियार तट पर
स्थित कालटी गाँव में हुआ था जन्म जगद्गुरु शंकराचार्य का
और इसी परंपरा में हुआ था जन्म श्रीनारायणगुरु का भी।

तिरुवनन्तपुरम से बारह किलोमीटर दूर स्थित है चेंपषंती
गाँव जहाँ वयलवारं नामक घर में हुआ श्रीनारायणगुरु का
जन्म अठारह सौ छप्पन में अगस्त बीस को और जन्म
देने से एक महापुरुष को वह घर हुआ ऐतिहासिक महत्व का।

वयलवारं मलयालम का शब्द है और अर्थ है खेतों के
किनारे का और यह घर होने से खेतों के किनारे पर घर
का नाम पड़ा था वयलवारं जो निर्मित था उन्नीसवीं
सदी में और सुरक्षित रखा गया है आज भी ज्यों-का-त्यों।

प्रसिद्ध है यह घर गुरुदेवभवन नाम से जिसकी
करके प्रदक्षिणा भक्तिभाव से होते हैं लोग धन्य
जहाँ हुआ है आविर्भाव एक युगपुरुष का जिन्होंने
दी है मानवता को एक नई दृष्टि और नई चेतना।

माटन आशान था गुरुदेव के पिताजी का नाम और
कुट्टी अम्मा था उनकी माताजी का नाम और
आशान शब्द से सूचित होता है पिताजी अध्यापक थे
क्योंकि आशान कहते थे उन दिनों में अध्यापकों को।

कुट्टी अम्मा थी परम साध्वी महिला जिनमें भरी थी
कूट-कूटकर भक्ति और करुणा और वे कहीं भी हो
प्रदान करती थी उनकी उपस्थिति शान्ति व आनंद सबको
इसलिए होता था उनका सम्मान चेंपषंती में सब कहीं। (क्रमशः)

मलयालम के विख्यात गीतकार, फ़िल्मि-निर्माता,निर्देशक एवं साहित्यकार ,केरल हिंदी प्रचार सभा के 'साहित्य कलानिधि पुरस्कार' से सम्मानित श्री श्रीकुमारन तंपी द्वारा मलयालम में रचित आत्मकथा 'जीवितं ओरु पेंडुलम' का हिंदी अनुवाद 'ज़िंदगी : एक लोलक' नाम से अगस्त 2024 के अंक से 'केरल ज्योति' मासिक पत्रिका में खण्डशः प्रकाशन किया जा रहा है। मूल कृति को मातृभूमि बुक्स ने 2022 मार्च में प्रकाशन किया और उसी साल के 'वयलार अवार्ड' से पुरस्कृत भी किया गया।अक्तूबर 2023 तक इसके चार संस्करण निकले,जो इस रचना की लोकप्रियता को व्यक्त करता है। हिंदी प्रचार सभा के स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र के प्राचार्य डॉ. पी. जे. शिवकुमार का यह अनुवाद पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में केरल हिंदी प्रचार सभा अत्यंत आनंद का अनुभव करती है।आशा है कि पाठक इसका लाभ उठाएंगे।

आरोहण.... अवरोहण...

प्रो.(डॉ)प्रभाकरन हेब्बार इल्लत

"कोण कैता है, अकेला हूँ। हयां माँ हैं, बाबा हैं, शीला है- सोए पड़े हैं सब। हयां महीप है, बल्द हैं, मेरी घरवाली है, मौत के मुँह से निकाले गए खेत है, पेड़ हैं, झरणा है। इन पहाड़ों पर मेरे पुर्खों, मेरे प्यारों की आत्मा भटकती रहती है, मैं उनसे बात करता हूँ, मैं अकेला कहाँ हूँ?" यह संजीव की कहानी 'आरोहण' की लगभग अंतिम पंक्तियां हैं। यात्रावृत्तांत की शैली में लिखी कहानी का वाचन नीचे (कहानी के अंत) से कर रहा हूँ, इसलिए कि पाठक भी भूप दादा के साथ दुख स्पी भ्याल (कहानी) का आरोहण कर सके। भूप के ये वाक्य दिल को स्पर्श करते हैं, उनको आगे रखे बिना कुछ कहा भी नहीं जा सकता है। कहानी का केंद्रीय पात्र भूप सिंह, जो कहानीकार के ही आत्मभाव को लेकर अपना कथात्मक जीवन यहाँ बिताता है। यहाँ स्पष्ट है कि माही गाँव भूतल से वैज्ञानिक माप-तौल में करीब दस हज़ार फुट ऊँचाई पर स्थित है, एकदम 'अन्य' से दूर, 'शहर' से दूर, तथाकथित 'विकास-संस्कृति-सभ्यता' से दूर। भूप दादा के मन में माही गाँव (शेखर कपूर की भाषा में खूबसूरत स्वर्ग जैसा इलाका) से निकलकर कहीं जाने का इरादा सपने के किसी कोने तक में नहीं रहता है। जीवन के लंबे अनुभवों व संबंधों के जैविक संजाल में रहने वाले भूप सिंह का जीवन-दर्शन इतना समग्र एवं समरसता से परिपूर्ण है कि वह अपने घर के सदस्यों, गाँव के मित्र-बंधुओं को मात्र नहीं, झरने-बल्द-भ्याल आदि को भी भीतर धरता है, 'सबी' के प्रति उसके दिल में दया-ममता का झरना झरता है। हम पाते हैं कि स्मृति में तारो-ताज़ा रहकर रागात्मकता को विकीर्ण कर रहे मरे हुए लोगों की आत्माओं के सान्निध्य को पल-पल अनुभव करता भूप दादा हमेशा उनके साथ जीने की अड़िग इच्छा प्रकट करता है। दूसरों की नज़र में वह बाहर से औरों से कटा हुआ है, पर अंदर से कभी नहीं। जीवन के विकल क्षणों में वह तिल भर भी डिग जाता नहीं, वह केवल एक पहाड़ी नहीं है, खुद एक पहाड़ बनकर जीवन जीता है। इसलिए ही शेखर कपूर जितना भूप सिंह को देखता है, उनके स्थैर्य देखकर हैरान रह जाता है। गहरे संघर्ष को अपने जीवन मूल्य के रूप में स्वीकार करने वाला भूप दादा दुख स्पी पहाड़ को हर रोज़ उतरता है, चढ़ता है। जीवन के सुख-दुख की चाक्रिकता को एकदम नैसर्गिकता के साथ स्वीकार करने वाले भूप की अपूर्व धीरोदात्तता अद्‌भुत है। साहस के साथ वीरता प्रकृति ने उसमें कूट-कूटकर भर दी है। असल में लगता है कि माही की सारी की सारी प्रकृति उसमें बसती है। प्रकृति के साथ घुला-मिला भूप सिंह का व्यक्तित्व यह जान लेता है कि प्रकृति भी हर दम सुख-दुख का आलाप-विलाप अपनी नित-नूतन लीला के माध्यम से रचती है। वह यह भी स्वीकार करता है कि मानव केवल प्रकृति की कृति है। ऋतुओं की चाक्रिकता से, प्राकृतिक दुर्घटनाओं की आवृत्ति से, भ्यालों की उतराई-चढ़ाई से भूप दादा जीवन के विरोधी तत्वों को अपने में समेट लेता है और उन्हें अपनी आत्मा के अंश के रूप में स्वीकार करता है। जीवन में सिर्फ सुख की खोज में निकलने वाला आदमी कभी सुख से भेंट नहीं कर पाता है। इतना तक नहीं कि सुख-दुख का तराजू डांवाडोल है। सुख के पीछे भागी भागी करना मृग-मरीचिका है। इस तत्वज्ञान से वाकिफ होकर संघर्षात्मक जीवन को आगे बढ़ाने वाला भूप दादा किसी भी हालत में अतिरेक का शिकार नहीं बनता है। किसी के आने-जाने से वह अत्यधिक खुशी-गम से तर-बतर होता नहीं है। उसने जान लिया है कि जीवन की अपनी एक खास लयबद्धता होती है और उसकी अपनी गतिशीलता होती है। उसी में उसका सौंदर्य भी है। काल-स्थान के आधार पर उसका रूपगत अंतर हो सकता है, पर अर्थगत अंतर नहीं। देखिए कि खुद का बेटा महीप भूप को गुनहगार समझता है, इसलिए कि दूसरी शादी से नाखुश होकर महीप की मैया (शैला) ने खुदकुशी (सूपिन नदी में कूद गई थी) की थी। रूठकर अपने से अलग रहने वाले बेटे का भी साथ मन ही मन वह कभी छोड़ता नहीं है या अपनी चारित्रिक दृढ़ता तथा समृद्ध आंतरिक जीवन बिताने की वजह से वह ऐसा कर भी नहीं सकता है। कहानी यह भी दर्शाती है कि ग्यारह साल के बाद मिलने आए अपने सगे भाई के प्रति भी स्वस्थ-सुंदर व्यवहार वह करता है। दिल में दुख तो है, पहाड़ी आदमी होने के नाते दुखी 'पहाड़' को कलेजे में ले चलता है और कहता है कि दुख की अनवरता अवश्य रही है, वह जीवन से अभेद्य है। उस निरंतरता को मन में रखते हुए भूप कहता है- तू कहेगा, चढ़ तो सिर्फ मैं रहा था, बाकी सब उतर रहे थे। मैं कहता, नहीं

अपणे-अपणे हिस्से की चढ़ाई तो सभी चढ़ रहे थे। चढ़ने का सबका अपणा-अपणा तरीका है।आगे भूप कहता है- "तू गया !, तेरे पीछे मा गईं ! बाबा गए ! फिर शैला गई ! सबसे आखिर में महीप भी चला गया हमें छोड़कर !" यह छोड़-जोड़ एकदम स्वाभाविक है। अपने ससस्त परिजनों-हितजनों को छोड़कर, माही से उतर कर अपने भाई के साथ रहने में कोई विशेष प्रयोजन भूप दादा कभी महसूस करता नहीं है। भूप सिंह तो रूप से भी माही में साथ-साथ रहने की जबरदस्ती या अनुरोध नहीं करता है। वह हर एक व्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रति कायल है। जब रूप सिंह अपने 'ग्यार' (घर) से निकलता है तो साथ निभाने की उम्मीद से हाथ पकड़ता है, फिर वह छोड़ देता है, फिर पकड़ता नहीं। वह रूप सिंह को अपने रास्ते पर जाने देता है।

ध्यान देने की बात है कि भूप सिंह की तुलना में रूप सिंह माही गांव के बाहर अपने लिए प्राप्त शहरी सुविधाओं को छोड़कर भूप के साथ रहने के लिए तैयार नहीं होता है। इसका कारण मुझे लगता है कि चरित्रगत अंतर है। उसके लिए शहर ही वरणीय है, अपनी तनख्वाह और परिवार जनों के साथ वह मसूरी में ही रहना चाहता है। इसलिए ही रूप सिंह तो अपने परिवार के सदस्यों को लेकर अपने गांव नहीं आता है। कहानी के अंत में रूप सिंह अपने भुइला से मिलकर वापस चला जाता है। शायद हमेशा के लिए सभी संबंधों से छोड़कर वह पहाड़ से उतरता है। ग्यारह साल के बाद मिलने वाले रूप सिंह के व्यवहार-बातचीत में जो अपनापन दिखना चाहिए या भाव का उद्वेलन या उफन होना चाहिए, उसका अनुभव कहानी का पाठक नहीं कर पाता है। वह अपना गांव शायद इसलिए आता है कि अपने 'गॉड फादर' (शेखर कपूर के पिता) के बेटे शेखर कपूर को एक बार गांव दिखाया जाए। उसके भीतर शेखर कपूर के पिता के प्रति मेहरबानी है। इसलिए ही जब शेखर कपूर के साथ गाँव आता है तो रूप सिंह शेखर कपूर को पहाड़ चढ़ाना तौहीन समझता है। लंबी अवधि तक अपने गांव से एकदम कटकर जीने में उसके मन में झिझक नहीं, पर यह सोचकर झिझक उत्पन्न होती है कि गांव पहुँच जाने पर गांव वालों के सवालों का जवाब कैसे दूँ, क्या दूँ। फिर भी जब गाँव में रूप सिंह पैर रखता है तो उसके मन में गाँव की स्मृतियाँ भर जाती हैं तो उसका मन भर्रा जाता है। घास गढ़ने वाली पहाड़ी लड़की के गाने के दर्द की टेर सुनकर रूप सिंह का मन भावुक हो उठता है। जब प्रकृति रूप सिंह के भीतर भर जाती है, तभी पुराने पहाड़ी अनुभव भीतर रेंगने लगते हैं। यादों की बारात निकलने पर भी ग्यारह साल के अंतराल में वह गढ़वाली भाषा भूल जाता है, वह अपना 'पहाड़ीपन' खो बैठता है ! गाँव पहुंचते ही रूप सिंह अपने गांव की भाषा को जोड़ने-सजाने लगता है। भूप सिंह का बेटा महीप को रूप सिंह (चाचा) और उसके दोस्त को घोड़े पर बिठाकर देवकुंड से गांव ले जाते समय दोनों के बीच की बातचीत के दौरान महीप को यह पता चल ही जाता है कि घोड़े पर सवारी बन कर आया रूप सिंह उसका चाचा है। फिर भी उसके भीतर ज़रा भी रिश्तेदारी या अपनापन उस वक्त उभर आता नहीं है। माही गाँव में उसे उतारकर यहाँ तक कि सवारी का पैसा लेकर महीप अपने रास्ते पर आगे बढ़ता है। कहानी सिखाती है कि संबंध संबंध से ही पनप उठता है। यहाँ मानव-मानव के बीच के संबंधों की दूरी कहानी खोलती है। कहानी यह भी दिखाती है कि किस प्रकार प्रकृति से दूरी बरतने पर तन की ताकत भी नष्ट हो जाती है। कहानी दिखती है कि प्रकृति-पहाड़ से बिलगाव बरतने पर 'पहाड़ी संतुलन' रहेगा कैसे ! इस पर रूप सिंह अंदर ही अंदर शर्मिंदगी का अनुभव करता भी है। मुझे ऐसा लगता है कि रूप सिंह के मन में उपजी शर्म की भावना अंतस में घिर गई शून्यता (एं) का नतीजा हो सकती है। इसलिए ही रूप सिंह की बातचीत वार्ता के दायरे से निकलकर गंभीरता का दर्जा हासिल करता हुआ दिखाई नहीं देती है। कहानी में पाठक यह भी अनुभव करता है कि रूप सिंह की तुलना में भूप की बातें अधिकांश संदर्भों में दार्शनिक धरातल को स्पर्श करती हैं। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रूप सिंह तो अभिजन संस्कृति का शिकार हो चुका है, बल्कि भूप की संपृक्तिलोक की संस्कृति के साथ है। शेखर कपूर के पिता के साथ का संबंध रूप सिंह को उस ओर ले जाता है। जिसके मन में अपनी संस्कृति-सभ्यता को लेकर हीनता की भावना रहती है, वही जल्द ही अभिजन संस्कृति के प्रति मुड़ जाएगा। भूप की तुलना में रूप 'सारहीन' इसलिए लगता है। अभिजन संस्कृति की तुलना में लोक की संस्कृति सामुदायिकता पर आधारित है। प्रकृति की ओर उसका झुकाव है। उसमें खुलापन है। संस्कृति उसके लिए व्यवसाय न होकर सामाजिक चेतना से विकसित एक मूल्यवत्ता है। जनानुभव के आधार पर विकसित तकनीकों की सहायता से ऐसा व्यक्ति अपने जीवन का गुजर-बज़र करता है। इतना तक नहीं, वह संकुचन का विरोध करती है, जैविक क्षेत्रीयता की बहुलता के संरक्षण की बात करती है, एकरंगता के स्थान पर बहुरंगता को पुष्ट करती है। वहाँ व्यक्ति नहीं, समाज बोलता है, जीता है।

अपने लौकिक जीवन के साथ अन्य को समाहित करने वाली आध्यात्मिक जीवन-पद्धति लोक संस्कृति के रग-रग में बसती है। यह भी हम पाते हैं कि प्रकृति पर विजय पाने की इच्छा अतिजीवन तक सीमित है, वहाँ उपभोग का संस्पर्श तनिक भी देखने को नहीं मिलता है। तबाही के समय में भी प्रकृति की भांति फिर से उभरने की नैसर्गिक अभिवांछा वह संस्कृति दिखाती है। भूमि-विचलन से भले ही माँ-बाप पहाड़ों की टीलों में दब गए, खेती उजड़ गई, तब भी फिर-फिर संघर्ष करने की ताकत प्रकृत्याधारित लोक-संस्कृति ने ही भूप में भर दी है। उज़ड़ी खेत को भूप-शैला द्वारा संवारने के लिए किए जाने वाले कार्य नए ढंग से जीवन को खड़ा करने का लघु इतिहास हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। संघर्ष का प्रकरण कहानी में इस प्रकार वर्णित है। भूप सिंह कहता है- "शैला के आने से खेती फैल गई, बर्फ जमी न रहे, सो हमने खेतों को ढलवाँ बणाया, मगर एक मुसीबत, पाणी कहाँ से आए। एक दिन पाणी की खोज में हम चढ़ गए इस हिमांग के साबुत ऊँचे हिस्से पर। वहाँ हमने देखा कि एक झरणा यूँ ही उस तरफ सूपिन में गिर रहा था।

कहानी में भूप सिहं के शब्दों में जीवन के कठिन पक्ष बिंबबद्ध होते हैं। इसलिए ही उसके अधिकांश संवाद वास्तविक संवाद हैं, जिनसे जीवन का जीता-जागता रूप सामने आता है। उसके शब्दों में कहीं व्यक्तिवाद का 'नीला रंग' नहीं है। भूप सिंह की तुलना में रूप की बातचीत में आलंकारिकता है, संवेदनात्मकता का हल्कापन नज़र आता है। पर भूप सिंह का व्यवहार नैतिक बंधन लिया हुआ है, वह उसके अंतकरण का भौतिक रूप है। वह किसी लाभ-लोभ के वश अपना कारोबार नहीं चलाता है। यांत्रिक गतिविधियों से उनका जीवन संचालित होता नहीं है। इसलिए भूप जड़यंत्र की तरह काम नहीं करता है, उसमें जैविकता है, जो प्रकृति प्रदत्त है। वह अन्य के प्रति खुला हुआ शख्स है। बंधुता का सच्चा रूप भूप दर्शाता है। बाहर से कठोर-खुरदरा दिखता है, पर अंदर से नरम। उसमें जीवन के द्वंद्वात्मक अनुभव-संबंधों से विकसित संगीतमयता है। भूप सिंह अपने जीवन में नैसर्गिक स्वतंत्रता का इस्तेमाल करता है। वृक्ष की भांति उसकी जड़ें गहराई तक जम चुकी हैं। वही उसकी अस्मिता है। वह किसी प्रकार के अत्याचार का साथ नहीं देता है। वह जानता है कि वह अन्याय की जननी है, जीवन विरोधी है। वह खुद की अंतर्प्रेरणा के अनुसार जीवन बिताने वाला होता है। लोक-संस्कृति में पला भूप सिंह का विश्वास एक हद तक परंपरानुमोदित है, वह मिथक का रंग भी लिया हुआ है। वह 'अन्य' के निदेशों के अनुरूप चलने वाला होता है, तात्पर्य आत्म का अनुसरण करने वाला नहीं होता है। ऐसा नहीं होता तो माँ-बाप के गुज़र जाने के समय कम से कम वह जरूर आता, भाभी की मृत्यु के समय आता, ज़रूर ग्यारह साल के बाद वह सपरिवार आता। लगता है कि अभिजन संस्कृति का शिकार होकर रूप ने अपने अभिकरणत्व को छोड़ दिया है। इसलिए ही कहानी के अंत में जो अलविदा का संदर्भ आता है, वह भावावेश से भरपूर नहीं हो पाया है। कठिन समय में दूर रहने वाला आदमी, आगे कब आएगा, उसका उत्तर पाठकों पर खुला छोड़ा गया है। शायद इसलिए ही कहानी के अंतिम वक्तव्य में भूप सिंह के कथन में रूप सिंह का नाम तक शामिल नहीं है। इस आलेख की प्रारंभिक पंक्तियों को गौर से पढ़ने पर पाठक की नज़रें अलग से उसपर पड़ सकती हैं। कहानी में पहाड़ दुख, मौत आदि का रूपक धारण कर आता है। रूप सिंह कहता है- "बहोत दुख झेले हैं आपने, बहोत। दुखों का पहाड़ लेकर चढ़ते रहे पहाड़ पर।" इस आधार पर हम कह सकते हैं कि रूप सिंह का माही से निकल जाने का मतलब दुख के पहाड़ से उतर जाना होता है। जब एक बार माही से रूप सिंह निकला तो उसकी खोज में भूप सिंह भी निकल गया था। रूप सिंह को पकड़कर गांव ले आते वक्तभूप ने तो उसकी कलाई ज़ोर से पकड़ी थी। बचकर निकल भागने के विचार से रूप ने भूप को धक्का दिया, दोनों फिसलकर ढलान पर लुढ़कने लगे तो नीचे जो पेड़ खड़ा था, उसके बल पर भूप ने अपने मज़बूत हाथों से रूप सिंह को थाम लिया था। दोनों किसी न किसी प्रकार (कुदरती ताकत के बल पर) बच गए और ऊपर तक रूप सिंह को पहुँचा देने के बाद उसे छोड़ दिया था। ठीक है कि भूप सिंह पर्वत के 'आरोहण' का मार्ग अपनाता है तो रूप सिंह 'अवरोहण' का मार्ग। जब रूप सिंह को जीवन में पहाड़ से उतर जाने का मौका हस्तगत होता है तो उसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं रहता है। अब वही रूप सिंह मसूरी की पर्वतारोहण संस्था में 'पर्वतारोहण' सिखाता है। रूप सिंह का मन गांव से हटकर शहर के साथ समायोजन कर जाता है। रूप सिंह के मन में पहाड़ी जिंदगी के प्रति विरक्ति-वितृष्णा है। वह आता है, वह भी शेखर कपूर के साथ। शेखर कपूर अपने पिताजी की बातों से प्रभावित होकर माही देखने आया है। तात्पर्य यह है कि कपूर को गाँव दिखाने के लिए रूप सिंह आया है। कहानी के पाठक को ऐसा लगता है कि अन्यथा वह कभी नहीं आता। कहानी में यह लिखा हुआ है कि जब शेखर

कपूर के पिताजी भारतीय प्रशासनिक सेवा के प्रशिक्षणार्थ इस इलाके में एक बार आए थे तो वे अपना रास्ता भटक गए थे। उस वक्त रूप सिंह ने उनकी मदद की थी। शेखर कपूर के पिताजी रूप सिंह को मसूरी ले जाते हैं और पर्वतारोहण संस्था में नौकरी में लगा देते हैं। अतएव लगता है कि ग्यारह साल के बाद रूप सिंह अपने गाँव में एक 'पर्यटक' के रूप में आता है। कहानी में इसका जिक्र है कि शेखर कपूर गांव की जिंदगी को नहीं सोख रहा है, वह उसकी सुंदरता को सोख-भोग रहा है। कहानी के आए वाक्य हैं- "शेखर अपने बाईनोकुलर से पहाडियों और घाटियों को देखने में रमा हुआ था।" शेखर रूप से कहता है कि यार, इट वाज ऐ रेयर एक्सपीरिएन्स जैसे प्रयोगों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि शेखर की भाव-मुद्रा पर्यटक की है, 'उपभोगोन्मुख' है। इतना भी नहीं, खुद भूप दादा का भुइला तक 'इंपोर्टेड घड़ी' पर नज़र दौड़ाता है। शहर के लोगों के लिए गांव एक उपभोग की जगह है। इस प्रदर्शनकारी या दिखावे की संस्कृति से भरपूर नज़रों से कभी गांव को न देखा जा सकता और न समझा जा सकता है।

प्रस्तुत कहानी में गांव-शहर का द्वंद्व भी देखने को मिलता है। गाँव हमेशा सभी दृष्टियों से उपेक्षित स्थली रही है तो शहर विकास की सुविधाओं की स्थली। गाँव की अभाग्रस्तता को कहानी इसप्रकार रेखांकित करती है- "अकेले जाना होता तो गाँव के लिए क्या सड़क है, क्या पगडंडी।" मकई की खेती गांव के लोग किस प्रकार खून पसीना करके कर रहे हैं, कहानी दिखाती है। यह कहना चाहता हूं कि गांव वास्तव में शहर का 'रसोईघर' है। शहर के अपशिष्ट का भी वहन गांव करता है। सही है कि शहर के उपभोग की तृष्णा की पूर्ति गांव करता है। इस उपभोग से प्रकृति का विध्वंस भी सरासर होता है। आजकल के पर्यावरणीय विध्वंस के आलोक में कहा जा सकता है कि जो भूस्खलन-विचलन, भूकंप आदि दुर्घटनाएँ माही में हो रही हैं, प्राकृतिक लगती हैं, पर व्यापक उपभोग का परिणाम भी हो सकती हैं। इसको लेकर गाँव वाले बिलकुल अनभिज्ञ हो सकते हैं। कहानी स्पष्ट रूप से इस बात की ओर रोशनी बिखेरती नहीं है, पर संभावना बनती है, नकारा नहीं जा सकता है। प्रकृति के अपदस्त होने से मानव अंतर-बाहर से निर्बल हो उठता है।

इस कहानी की खूबी यह भी है कि प्रकृति एक अदृश्य पात्र के रूप में सर्वत्र छाई हुई है। यहाँ प्रकृति पात्रों के आंतरिक-बाह्य परिवेश को रूपायित करती है। प्रकृति के साथ घुली-मिली जिंदगी जीने के कारण भूप जैसे पात्रों का चरित्र भी उसी प्रकार स्थायित होता है। प्रकृति की गोदी में पले पहाड़ी इनसान (भूप) के पथरीले-सख्त शरीर का चित्रण कहानी इस प्रकार करती है। देखें- "गोरा चिट्ठा चित्तीदार चेहरा, मानो ग्रानाइट पत्थर तराशकर गढ़ा गया सख्त लंबोतरा चेहरा, उसकी अजीब सी स्थित प्रज्ञ आंखें, मद्दिम-मद्दिम जलती हुई भौहों पर कटे का निशान, वही है, बिल्कुल वही। ग्यारह सालों में और भी ठोस और भी सख्त हो गए थे भूप दादा।" इस उद्धरण से यह व्यक्तहोता है कि भूप 'भ्याल' है। 'बहोत दुख' झेलने की ताकत भी उसे इससे ही मिली है। जीवन की विषम स्थिति का वर्णन भी कहानी में हैं, जैसे- "कुहासे का होना क्या मायने रखता है इन पहाड़ों में, इसे तो कोई पहाड़ी ही समझ सकता है। रिश्ते तक धुंधला जाते हैं साहब! नेह के रास्ते तक नज़र नहीं आते। पास में अपना कोई खड़ा है। और उसे आप देख नहीं पाते, पहचान तक नहीं पाते।" मौसम में बर्फ एक रेगिस्तान की तरह पसरती रहती है चारों तरफ! जब पिघलती है, तभी कुछ हो पाता है। कहानी के पात्र भी अपनी जिंदगी की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए प्रकृति की शरण में जाते हैं। कहानी में एक लोक कहानी व गीत का जिक्र है। उस कहानी का गीध नन्हीं चिड़िया से कहता है कि मैं तुझे खा जाऊँगा, इसलिए कि चिड़िया गीध से उपर उड़ नहीं सकती है। इसके उत्तर में नन्हीं चिडयिा धीरज संभालकर कहती है कि अगर में तुझसे ऊँचा उड़कर दिखा दूँ तो? इसके उत्तर में गीध कहता है कि तब तो मैं नहीं खाउंगा। ऐसे में मुकाबल ठण जाता है। गीध उसके 'बचकाणेपण' पर हँसता है। गीध की नज़रों में चिड़िया की कोई बिसात नहीं रहती है। लंबे-लंबे डैने फहराए गीध आसमान पर ऊपर-ऊपर उड़ता गया। चिड़िया डर गई। पर धीरज बांधकर पूरी ताकत के साथ उड़कर चिड़िया गीध के उपर बैठ गई। असल में वह मौत की पीठ पर बैठकर की जाने वाली यात्रा थी। भूप की जिंदगी भी उससे भिन्न नहीं थी। मरण को चुनौती देकर भूप ने गीध रूपी पहाड़ पर अपना बसेरा बना लिया है, वहाँ अपनी जीविका चला भी रहा है। असीम स्थैर्य के साथ जीवन की कठिनाइयों के सामना करने की ताकत भूप में है। ऐसे लोगों का जीवनानुभव ही लोक कहानी का रूप धारण कर आता है। एक लोकगीत का भी उल्लेख कहानी में हैं, उसमें भी प्रकृति का राग-रंग है। यहाँ पहाड़ी लोगों का अन्य लोगों के प्रति दिखाए जाना वाला खयाल व्यंजित होता है। सूपिन नदी की घाटी से कोई पहाड़ी लड़की गाना गा रही है। 'हिलांस' पक्षी को संबोधित करते हुए

गीत कहता है कि ऊँची-ऊँची डांडियों मा/हे कुहेड़ी न लाग तू/ऊँचे-ऊँचे पांखों मा/हे घसेरी न जाए/उंची-उंची डांडियों मा/हे हिलांस न बास तू। तात्पर्य यह है कि- ऐ कुहरे, ऊँची-नीची पहाडियों में जाकर तू न लगो जाकर। इसपर कुहरा घासवाली लड़की से कहता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में तू जाया न कर। इस तरह वह हिलांस नाम के परिंदे को भी अगाह करता है कि ऊँची-नीची पहाड़ियों में अपना बसेरा न बनाया करे, क्योंकि हवा की तीखी मार से वह उड़ जाएगा। यह हिलांस पक्षी पहाड़ी इनसानों के प्रतीक अलावा और क्या हो सकता है? किस प्रकार जीवन का यथार्थ कविता का रूप धारण करता है, कहानी दिखाती है। काव्यमयी भाषा के ढांचे में कहानी में प्रयुक्त मौत की तरह भ्याल का फैलना, 'मौत की पीठ पर बैठकर जाना' जैसी पंक्तियाँ कठिन जीवन के यथार्थ को रेखांकित करती हैं। माही गांव के पास होकर बहने वाली सूपिन नदी के साथ एक मिथक भी जुड़ा हुआ है। वह यह है कि सूपिन और रूपिन दो राक्षसी बहनें थीं, उनको शाप देकर शिवजी ने उन्हें नदियाँ बना दीं। यह भी शाप दिया था कि तुम जहाँ से होकर बहोगी, पानी किसी के काम में नहीं आएगा। कहानी में एक वाक्य आया है- "शाप की मारी अभागिन सूपिन।" इसके पीछे की मिथकीय कल्पना यही रही है। उत्तराखंड की लोक संस्कृति में जो मिथकीय आख्यान हैं, उनका भरपूर इस्तेमाल कहानी करती है। माही लोगों का विश्वास है कि इस इलाके से होकर पांडव - सुरगी (स्वर्ग) गए थे। जीवन रूपी महाभारत की लड़ाई ही स्वर्ग का रास्ता प्रशस्त करता है, उसका रास्ता माही से होकर जाता है! प्रसंगवश बताता हूँ कि इस मिथकीय विश्वास पर आज भी इस इलाके में साल में एकाध बार पांडव नृत्य होते हैं। इससे व्यक्तहोता है कि प्रकृति ही भाषा के रूप में, संस्कृति, मिथक आदि के रूप में परिवर्तित होती है। 'प्रकृति' के अनुरूप ही भूप की भाषा खुरदरी लगती है तो रूप सिंह और शेखर कपूर की भाषा परिष्कृत होती है। जब पात्र अपनी मूल भाषा में बोलने लगता है, तभी उसकी बात कारगर हो सकती है, उसका चरित्र खुलता है। कहानीकार अपनी कल्पनात्मकता के बल पर भाषा को परिवेश के अनुरूप ढालने में समर्थ निकला है। जिस परिवेश की भाषा द्वारा मानव का लोकबोध संरचित होता है, उसी भाषा के माध्यम से ही सही-सही अभिव्यक्ति दी जा सकती है। इस कहानी की एक विशेषता यह है कि उसमें भाषा का मानवीकरण किया गया है। प्रकृति से घुले-मिले व्यक्तियों की भाषा में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। अपनी भावनाओं के विस्तार के माध्यम के रूप में प्रकृति के उपादानों का उपयोग मानवीय अस्मिता की उदात्तता की विस्तारता का प्रमाण है, साथ ही उत्कृष्ट भाषिक व्यवहार का दस्तावेज़ भी। इससे एक साकल्यवादी जीवन दर्शन का अनुभव पाठक करता है। बस यह कहना चाहूँगा कि माही गाँव की पृष्ठभूमि के अनुरूप कहानी की भाषिक संरचना निर्मित हुई है। कहानी के प्रयोग इसके गवाह हैं। नीचे दिए गए उदाहरण पढ़िए- पहले पहाड़ तक का रास्ता ठीक-ठीक था, मगर उससे उतरते ही धूप का उजला चंदोवा जहाँ-जहाँ दरकने लगा था, धूप की सुंदरी पट्टियों के बीच, छाया की स्याह पट्टियाँ, मानो धारीदार खालों वाला वह विशाल जानवर पगुरा रहा था, सामने के पहाड़ों पर बादलों के पंख लग गए थे, जो झर-झर कर उनके आगल-बगल उड़ रहे थे, नींद की झील में डूब गया रूप का जवाब, नदी माँ, प्रेम की चढ़ाई, बूढ़े के चेहरे पर अपरिचय की शिला हिलकर रह गई, अंदर के हिम के पिघलने का इंतज़ार। साथ ही कहानी भाषिक विविधता (जीवन की विविधता) को समारोहपूर्वक मनाती है और मानकीकृत भाषा का तिरस्कार करती है।

इससे व्यक्त होता है कि 'आरोहण' कहानी वास्तव में जीवन के 'अवरोहण' को भी चित्रित करती है। कहानी-वाचन की बारंबारिता जीवन की बहुरंगता एक-एक करके वाचक के सामने प्रस्तुत करती है। सुख-दुख, सबल-निर्बल, गांव-शहर, प्रकृति-संस्कृति, नैसर्गिकता-कृत्रिमता आदि के कूलों से होकर बहने वाली कहानी का वस्तु-रूप विन्यास जीवंत बन पड़ा है। संजीव की कहानी कला मानव-मानव, मानव-प्रकृति, मानव-संस्कृति आदि के बीच के पारस्परिक संबंधों की उदात्तता की उत्तुंगता की ओर अग्रसरित होने के लिए अवश्य ही उत्प्रेरित करती है। यही संजीव की 'आरोहण' कहानी की पहचान है।

संदर्भ

संजीव, संजीव की कथा-यात्रा (दूसरा पड़ाव)
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ. 307-326.

प्रोफेसर, हिंदी विभाग
कालिकट विश्वविद्यालय

यात्राविवरण

मानस कैलास

अनुवाद : प्रो. डी. तंकप्पन नायर   मूल : मंजु वेल्लायणि   अनुवाद : डॉ.रंजीत रविशैलम

(पूर्व प्रकाशित से आगे)

13. त्रयोदशी

हिमशैल रुद्राक्ष

सूप, चाय, कॉनफ्लैक्स - गाइड डारजी और निमा के इस तरह चिल्लाने के स्वर सुनने पर ही आँखें खुली थीं। गिलास भाप निकलती केतल के साथ षेर्पा लोग हँसते हुए खड़े हैं। दो गिलास सूप एवं बिस्कट खाने पर बड़े ही सुकून महसूस किया। षाजु और बिजु अभी भी होश में नहीं थे।

'हैलो' - नज़दीक के काठ से परिचित आवाज़। साई मीरा है। थकावट के कारण तंपु के काठ पर गिरते वक्त अन्य काठों पर कौन लेटा है, इसका ध्यान नहीं किया था। अतुल भार्गव और खन्ना मीरा के अगल बगल के काठ में है। अतुल थरथरा काँपते और आवाज़ निकालता है। मानसरोवर में देखा गया धीरज एवं ताकत उसको अब नहीं थे। कुल डरा हुआ-सा लग रहा है। अत्यंत सर्दी लगने पर भी खन्ना के भाव-हाव में कोई बदलाव नहीं। वह एक सिगरेट जलाकर धूम्रपान करने लगा। मीरा ने भी सिगरेट के लिए हाथ बढ़ाया। खन्ना ने जो दो सिगरेट दी थीं उनमें से एक को सूप लाने वाले षेरपा को दिया। उसकी मुस्कराहट शायद निधि पाने जैसे भाव में थी।

बरसाती से गिरा पानी तंबू के अंदर संग्रहीत हो गया है। हाथ रगड़कर बाहर निकला। बारिश पूर्ण रूप से थम गई है। षेरपा लोग खाना पकाने में व्यस्त है। तराई के गोंपा एवं नीचे के कैंप से धुआँ उठ रही है। जहाँ खाना पक रहा होता है वहाँ बहुत भीड़ है। आग सेंकने के लिए है। आसमान पर देखने पर पहले कैलास यात्रियों को डरानेवाली बारिश हुई थी जैसा नहीं लग रहा है। ईश्वर का चेहरा है आसमान। नवरस उसमें स्पष्ट प्रकट होते हैं। न रूप है न भाव है। चाँदनी जैसा स्मयन करता है। बारिश से कारुण्यवर्षा भी। काली घटा छाने पर क्षिप्रक्रोध। जब वह हटता है तो क्षिप्रप्रसाद।

दिवाकरन नायर, जयचंद्रन और विजयकुमार अभी आए नहीं हैं। उन्हें खोजने निमा के सहायक गए हुए है। तंबू के बाहर के विशालकाय मैदान में घोडे चरा रहे हैं। देरापुक में आनेवालों में से एक समूह आधे रास्ते से ही षेरसोम की ओर लौटा। उन्होंने कहा कि देरापुक और सुत्तुलपुक में हिमपात है कहकर कतिपय घोडेवालों एवं पोर्टरों ने उन्हें डराया था। उन्हें मज़दूरी मिल चुकी थी। वह लाभ है। कल दूसरे संघ के साथ आ भी सकता है। ऐसे छल भी कैलासयात्रा में सहज है।

घोर वर्षा एवं ठंडी हवा को पारकर शांतकुमारी अम्मा और माताजी को देरापुक में पहुँचाने की खुशी बालगोपाल के चेहरे में दर्ज है। घोडे पर चढ़कर आए राधाकृष्णन नायर बारिश से पहले ही कैंप में पहुँच गया था। षेरपाओं एवं घोडेवालों के आपसी संवाद सुननेवाले बालगोपाल ने एक बात स्पष्ट कर दी कि कैलासयात्रा की मुश्किल घड़ी पार हो चुकी है। परीक्षाएँ ही महादेव की पसंदीदा पूजा एवं अर्चना है। यात्रा के दौरान कहीं पर प्रत्येक यात्री को भगवान आड़े हाथ लेते हैं। उसका अहंकार और विभक्ति को

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'पुष्टिमार्ग लक्षणानि' किसका लेख है?
2. 'बावरा अहेरी' किसकी रचना है?
3. 'सरस्वती' पत्रिका के प्रथम संपादक कौन थे?
4. 'राजेंद्र बाला घोष' किस नाम से प्रसिद्ध हुई?
5. छायावाद का अंत किस रचना से हुआ?
6. सूफ़ियों ने वेदांतियों की तरह जीव को क्या माना है?
7. 'पृथ्वीचंद्र चरित्र' किसकी विशिष्ट रचना है?
8. 'डिंगल शब्द का असली अर्थ अनियमित अथवा गँवारू था' - किसका कथन है?
9. 'कीर्तिलता' किसकी विख्यात रचना है?
10. 'सारा आकाश' किसका उपन्यास है?
11. 'पत्नी की तस्वीर' किसकी कहानी है?
12. 'पृथ्वीपुत्र' निबंध संग्रह का रचनाकार कौन है?

13. 'जब चित्रकला का यह शब्द साहित्य में आया तो इसकी परिभाषा भी स्वभावतः इसके साथ आई' - डॉ नगेंद्र जी का कथन किस साहित्य विधा के बारे में है?
14. 'शब्दों का जीवन' किसकी रचना है?
15. 'पत्थलगड़ी की औरतें' किसकी कविता है?
16. 'अमीर खुसरो' किसकी कविता है?
17. 'ठाकुर का कुआँ' किसकी कविता है?
18. 'देवयानी' नाटक किसकी रचना है?
19. उपन्यास के विषय का विस्तार मानव चरित्र से किसी कदर कम नहीं है-किसका कथन है?
20. विक्रम धँसा प्रेम के धारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा-किस ग्रंथ की पंक्तियाँ हैं?

उत्तर : पृष्ठ 36 में

हटाने के लिए ही ऐसा करते है। कुछ लोग डर के मारे वापस चले जाते है। कुछ लोग बीच रास्ते में किसी सत्र में रहते हैं। शंकर के चरणकमलों पर पडनेवालों को कभी भी वे लात नहीं मारते। वह भी नहीं कि हाथ बढ़ाकर ताकत भी प्रदान करते हैं।

बड़ी मुश्किल से षेरपाओं के संवादों से प्राप्त जानकारियाँ बालगोपाल ने बतायीं। पर्वतों की आराधना करते बौद्धों ने उन्हें मुख्य बोधिसत्वों के नाम ही डाल रखे हैं। पद्मसंभव, मंजुश्री, वज्रधर, अवलोकितेश सभी बोधिसत्व हैं। उन्हें मन में श्रद्धा अर्पित कर उनके नाम के पर्वतों का नमन करता हूँ। संज्ञान की मूर्ति एवं विज्ञानदायक है मंजुश्री। तलवार ऊपर की ओर कर सिंहवाहक स्वरूप प्रकट होते मंजुश्री का रूप एवं तलवार ऊपर कर नीलकमल में बैठे मंजुश्री के रूप की बौद्ध लोग आराधना करते है। देवेंद्र और सूर्य के प्रतिरूप है वज्रघर और पद्मघर। यह जुडवा वज्रायुध एवं कमल हाथ में थामे विराजने की संकल्पना है। करुणा एवं वात्सल्य की मूर्ति है।

महायान बौद्धों की आस्था है अवलोकितेश्वर पर। अनेक मुख एवं हज़ार हाथ तथा प्रत्येक हाथ में एक एक आँख युक्त अवलोकितेश्वर सारी आँखें खोलकर पर्वत के ऊपर विराजते हैं। उनकी मान्यता है कि बुद्ध के बाद इस प्रपंच का निरीक्षण एवं संरक्षण करनेवाले अवलोकितेश्वर हैं।

घोड़े चरते मैदान में खडे होने पर ही सामने दर्शित कैलास के निचले भाग को ढँक कर खडे जांबियाङ् पर्वत को देख सकते हैं। दो हज़ार फीट की ऊँचाई वाले इस पर्वत की चोटी पर पहुँचने पर कैलास को एकदम नज़दीक से देख सकेंगे। कैलास को सबसे निकट देख सकने का स्थान भी यही है। प्रणवानंद स्वामी एवं तपोवन स्वामी ने यह कहा है कि कैलास के सबसे विशुद्ध एवं विशाल निकटस्थ दर्शन वटक्कुम नाथन का है। (क्रमशः)

कहानी का नाट्यरूपांतरण
(रूपांतरित नाटक 'ठाकुर का कुआं' के विशेष संदर्भ में)

डॉ.राखी क्लेमन्ट

रूपांतरण शब्द 'रूप' तथा 'अन्तरण' के योग से बना है। इसका अर्थ है रूप को बदलना । डॉ. शंभूनाथ द्विवेदी के अनुसार अनुसार "एक विधा की रचना को दूसरी विधा में परिवर्तित किए जाने की प्रक्रिया को 'रूपांतरण' कहा जाता है। कई विद्वान इसे विधान्तर भी कहते हैं।"[1] परिवर्तन, अनुवाद, उल्था, एडेप्टेशन आदि इनके पर्यायवाची शब्द हैं। साहित्यिक विधाओं तथा साहित्येतर विधाओं में यह प्रक्रिया निरंतर होती रहती है। इस प्रक्रिया से निश्चय ही इन विधाओं के पारस्परिक संबंधों को नया रूप एवं नई गति प्राप्त होती है।

साहित्य के लगभग सभी विधाएँ रूपांतरण के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर पौराणिक तथा अन्य कथाख्यानों के आधार पर प्रबंध काव्य के रूप में, नाटक के रूप में, कहानी के रूप में तथा उपन्यास के रूप में रूपान्तरण की प्रक्रिया चल रही है। इस प्रकार रूपांतरण की प्रक्रिया प्राचीन काल से ही प्रचलित थी। लेकिन इसका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार आधुनिक काल में ही हुआ। मुद्रण का आविष्कार तथा रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा जैसे दृश्य-श्रव्य-माध्यमों एवं नव माध्यमों के विकास ने इसको बहुविध रूप प्रदान किया।

सातवाँ और आठवाँ दशक नाटककार और निर्देशकों के लिए अनेक प्रकार की चुनौतियों का समय था। उन चुनौतियों के समाधान के रूप में एक नई कलात्मक विधा के रूप में नाट्यरूपांतरण का आरंभ होता है। पीछे नाट्यरूपांतरण नाटक एवं रंगमंच का एक अभिन्न अंग बन गया। आज नाट्यरूपान्तरण एक सशक्तविधा बन गयी है। इसमें मुख्य रूप से नाटकेतर साहित्यिक कृतियों का नाटक रूप में परिवर्तन या अन्तरण करने की प्रक्रिया होती है। यह एक पुनर्सृजन की नयी पद्धति है। "कारण चाहे अच्छे मौलिक नाटकों की कमी हो या नयेपन की तलाश अथवा कोई और सुविधा-यह सच है कि हिंदी के अधिकांश रंगकर्मियों और नाट्य दलों ने नाट्यरूपान्तरों को अभिमंचित अवश्य किया है।"[2] इस अनोखी साहित्य सृजन से जनमानस अवश्य आन्दोलित हो उठता है। साहित्य की सभी विधाओं को अपने आप में समेटने की क्षमता नाटक में निहित होने के कारण साहित्य की सभी विधाओं को रूपान्तरण की प्रक्रिया द्वारा नाटक रूप में ढाला जा सकता है। इससे मूल रचना को पढ़ने, सुनने और देखने का अनुभव एक साथ मिल भी जाता है।

नाट्यरूपान्तरण दो प्रकार के हो सकते हैं- मूल कृति की वस्तु को ज्यों-का-त्यों किसी दूसरी विधा में लाना और मूल कृति की वस्तु को आधार बनाकर रूपान्तरकार की कल्पना के अनुसार किसी दूसरी विधा में लाना। "डॉ.गिरीश रस्तोगी के अनुसार -किसी भी कृति को संवादबद्ध कर देना नाट्यरूपान्तरण नहीं है। नाट्यरूपान्तरण न गौण वस्तु हैं, न द्वितीय-तृतीय स्तर की चीज़। वह भी सृजन हैं- एक मौलिक कृति का पुनर्सृजन। इसलिए उसका तात्पर्य किसी बनी-बनाई रचना को केवल इस्तेमाल करना नहीं है, उस रचना में अन्तर्निहित दूरगामी संभावनाओं और कला एवं साहित्य के विलक्षण सम्बन्ध-सूत्रों को तलाशना, पिरोना और नवीन सौन्दर्यबोध के साथ बड़े समूह तक संप्रेषित करना है और लिखित शब्दों को दृश्यात्मक लय,टोन और भिन्न आकार देना है।"[3]

बहुत से हिन्दी और अन्य देशी-विदेशी भाषाओं के अनेक साहित्यिक रचनाओं के नाट्यरूपान्तरण/ मंचन हुए हैं और अब भी हो रहे हैं। कहानी, उपन्यास, कविता, नाटक, लघुकथा, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा जैसी प्रचलित सभी साहित्यिक विधाएँ नाट्यरूपान्तरण के लिए उपयोगी सिद्ध होती हैं। फिर भी ज़्यादातर रूप में कथा-साहित्य का नाट्यरूपान्तरण अधिक हुए हैं। इन दो विधाओं के नाट्यरूपान्तरण से हिन्दी रंगमंच संपन्न हुआ है। यह प्रक्रिया रंगमंच का अभिन्न अंग बन गया। "छठे-आठवें दशक में तीव्र रचनात्मक प्रक्रिया के साथ कथा साहित्य रंगमंच का अभिन्न अंग बना।"[4]

कहानी का नाट्यरूपान्तरण एवं मंचन : कहानी और नाटक दोनों ही कथ्यात्मक साहित्यक रूप है। दोनों में समानताएँ होते हुए भी कुछ भिन्नताएँ भी हैं। हर कहानी में नाटक है और नाटक में कहानी है। अपनी रचना और प्रस्तुति की प्रक्रिया में वे एक-दूसरे के निकट आ जाते हैं। कहानी का निर्माण पढ़ने के लिए होता है, रंगमंच के लिए नहीं। इसके विपरीत नाटक की रचना सर्वप्रथम नाटकीयता/रंगमंचीयता को ध्यान में रखकर की जाती है। कहानी लिखते समय कहानीकार का ध्यान पाठकों में ही रहता है। लेकिन नाटककार रंगमंच तथा दर्शक

और पाठक दोनों वर्गों को ध्यान में रखता है। इस प्रकार के दो विधाओं के घुल-मिल जाने से आज एक नयी विधा बन गयी है- 'कहानी का नाट्यस्थान्तरण'। इसमें कहानी सुनते या पढ़ते समय श्रोता या पाठक के मन या आँखों के सामने आनेवाले दृश्य जगत को साकार करने की प्रक्रिया होती है। अर्थात् पढने, सुनने और देखने का अनुभव एक साथ मिलता है। महेश आनन्द के अनुसार "कहानी किसी घटना या स्थिति का किया गया वर्णन है, जिसमें वह वर्तमान में अतीत की सूचना बनती है। इसके विपरीत नाटक घटित हो रही या होते रहने की दृश्यात्मक प्रस्तुति है। एक दूसरे बिन्दु पर कहानी निश्चित रूप से एकान्तिक अनुभव बनती है तो नाटक समूह मन को सम्बोधित करता है, क्योंकि अभिनेता की नैसर्गिक प्रतिभा सामूहिक अनुभव पर निर्भर करती है, इसलिए इस प्रयोग में कहानी सामूहिक अनुभव में ढलती है, जिससे दर्शक भी साझा करते हैं। इसलिए कहानी का मंचन करने से तीनों तरह के अर्थात् पढ़ने, सुनने और देखने का अनुभव मिलता है।"[5]

कहानी के नाट्यस्थान्तरण की सफल शुरु आत देवेन्द्रराज अंकुर ने की थी। उन्होंने 1975 में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा निर्मल वर्मा की तीन कहानियों-'धूप का टुकडा', 'डेढ़ इंच ऊपर' और 'वीकेंट' को 'तीन एकान्त' नाम से प्रस्तुत किया। इस प्रयोग को बाद में 'कहानी का रंगमंच' नामक संज्ञा मिली। अंकुर जी ने 1975 से लेकर 1990 तक के समय लगभग 112 कहानियों का मंचन किया। इसके लिए उन्होंने विभिन्न शैलियों को अपनाया। उनमें, एक ही कहानीकार की एक या अधिक कहानियों का मंचन, भिन्न कहानिकारों की दो या तीन कहानियों को चुनकर एक अलग नाम देकर मंचन आदि शामिल हैं। इस दृष्टि से मोहन राकेश की चार कहानियों- 'बस स्टैन्ट की एक रात', 'मिसपाल', 'अपरिचित', 'एक और ज़िन्दगी'-का एक साथ मंचन चर्चित है। साथ ही साथ चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', प्रसाद की 'आकाश दीप', प्रेमचंद की 'कफन' का 'अलगाव तीन सन्दर्भ' नाम से रूपांतरण भी चर्चित है। अंकुर के इस प्रयोग का तत्कालीन आलोचकों एवं समीक्षकों ने प्रबल विरोध किया। फिर भी कालान्तर में यह एक मुहावरा बन गया।

देवेन्द्रराज अंकुर जी के बाद आनेवाली पीढ़ियाँ 'कहानी के रंगमंच' के प्रयोग से हटकर सोचने लगी। उन लोगों ने मूल कृति को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत न करके उसमें कुछ जोड़ने और छोड़ने का प्रयास किया। यह प्रयोग आधुनिक हिन्दी रंगमंच की महत्वपूर्ण प्रवृत्ति बन गयी है। प्रेमचंद, प्रसाद, रेणु, परसाई, भीष्म साहनी, मोहन राकेश, अमृतलाल नागर, उदय प्रकाश से लेकर अद्यतन पीढ़ी के प्रसिद्ध रचनाकारों की कहानियों के नाट्यस्थान्तरणों से हिन्दी साहित्य एवं रंगमंच को लाभ मिला। हनुयादव द्वारा स्थान्तरित 'पंचलाइट' (रेणु की),'अरथी'(श्रीकान्त वर्मा की), 'जीव खो गया' (परसाई की भोलाराम का जीव का), हबीब तनवीर द्वारा स्थान्तरित 'मोटेराम का सत्याग्रह' (प्रेमचंद की सत्याग्रह का), 'उसकी रोटी'(मोहन राकेश की),अरुण कुकेरजा द्वारा निर्देशित 'पंचपरमेश्वर'(प्रेमचंद), 'उसने कहा था' (गुलेरी), 'उसकी माँ(उग्र),'आकाशदीप'और 'पुरस्कार' (प्रसाद), प्रसन्ना के 'शतरंज के खिलाड़ी' (पहले कन्नड़ में, 'फिर गद से पहले दिन' नाम से) और 'तिरिछ' (उदयप्रकाश) आदि उत्तम उदाहरण हैं।

कहानी के नाट्यस्थान्तरण से हिन्दी साहित्य और रंगमंच को गतिशील एवं समृद्ध बनाने में महिला रचनाकारों ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं। गिरीश रस्तोगी द्वारा स्थान्तरित 'और अन्त में प्रार्थना', 'जयदोल' (अज्ञेय), 'कफन'(प्रेमचंद), 'नमक का दारोगा'(प्रेमचंद), 'टुकड़ा-टुकड़ा' आदमी(मृदुला गर्ग),'सालवती' (प्रसाद) और अंत में प्रार्थना(उदय प्रकाश)चित्रा मुद्गल का तीन नाट्यस्थान्तरित पुस्तकें- 'बूढ़ी काकी तथा अन्य नाटक', 'सद्गति तथा अन्य नाटक' और 'पंचपरमेश्वर तथा अन्य नाटक', मृदुला गर्ग द्वारा ए.आर. बाइली की अंग्रेज़ी कहानी 'पा.दे.कातर' का 'फिर एक बार' नामक नाट्यस्थान्तरण, उषा गांगुली द्वारा बंगला की विख्यात लेखिका महाश्वेता देवी की 'रुदाली' का नाट्यस्थान्तरण- इन रचनाकारों के इस क्षेत्र में रहे महत्वपूर्ण योगदान के दस्तावेज़ हैं।

कहानी और नाटक दोनों कथात्मक साहित्य है, दोनों में कथानक, चरित्र, देशकाल आदि समान तत्व हैं। ये समानताएँ होते हुए भी दोनों में कुछ भिन्नताएँ भी हैं। कहानी के विवरणात्मक श्रव्य अनुभव को नाटक के संवादों, क्रियाओं एवं स्थितियों के माध्यम से सीमित समय में, दृश्यानुभव में बदलने की प्रक्रिया ही कहानी का नाट्यस्थांतरण में होता है। यह वास्तव में कहानियों के भीतर नाटक एवं रंगमंच को तलाश करने का प्रयास है साथ ही कहानी के अदृश्य मर्म को पकड़ने की कोशिश भी है।

हर कहानी में किसी न किसी रूप में कोई छोटा-बड़ा नाटक रहता है। अतः कहानी और रंगमंच के बीच एक अप्रत्यक्ष रिश्ता मौजूद है। वास्तव में यह विशेषता ही कहानी के नाट्यस्थान्तरण को मूल्यवान बनाता है। स्थांतरकार/निर्देशकों

ने नाटकीयता से युक्तकहानियों को चुनकर अधिक नाट्यरूपांतरण किया है, क्योंकि वैसा करने से चुनौती से बच सकते हैं साथ ही सफल होने की संभावना भी अधिक है। कहानी के नाट्यरूपान्तरण करने की प्रक्रिया में रूपान्तरकार/निर्देशक एक निर्दिष्ट नियम और सिद्धांत का पालन न करके मूलभूत तत्त्वों - कथावस्तु, चरित्र, संवाद, संप्रेषणीयता - के साथ न्याय करके प्रस्तुत करना अनिवार्य है।

'ठाकुर का कुआं' कहानी का नाट्यरूपान्तरण : एक अध्ययन : प्रेमचंद की 1932 में प्रकाशित छोटी-सी कहानी है- 'ठाकुर का कुआं'। इसका नाट्यरूपान्तरण शिवराम जी ने किया है। कुशल नाट्य-लेखक, निर्देशक एवं अभिनेता के रूप में ख्याति प्राप्त शिवराम जी का नाट्यरूपान्तरित पुस्तक है- पुनर्नव- (जनप्रिय कहानियों के नाट्यरूपान्तर)। इसमें 'ठाकुर का कुआं', 'सत्याग्रह', 'ऐसा क्यों हुआ?' (आधार कथा : प्रेमचंद), 'खोजा नसरुद्दीन बनारस में' (आधार कथा : रिजवान जहीर उसमान), 'क्यों? उर्फ वक्तकी पुकार' (आधार कथा : नीरज सिंह) आदि कहानियों का नाट्यरूपान्तरण हैं।

'ठाकुर का कुआँ' एक ऐसी कहानी है, जिसमें दलित जीवन की त्रासती और वर्ण-व्यवस्था की अमानवीयता का गहरा चित्रण मिलता है।

नाट्यरूपान्तरण का आरंभ कोरस के गीत से होती है- "ठाकुर का कुआं/ठाकुर का कुआं.../पानी में आग लग गई/धुआं ही धुआं/...पानी हुआ बेपानी/पानी के खो गए मानी/...जाति-पांत,उँच-नीच/ज़िन्दगी धुआं धुआं/ वर्णभेद,लिंगभेद,ज़िन्दगी धुआं धुआं/ ठाकुर का कुआं,ठाकुर का कुआं//"[6]। इस गीत से ही उन लोगों के वास्तविक ज़िन्दगी का पता चलता है। यह कहानी का आद्यन्त सूक्ष्माधिसूक्ष्म अंश को भी दर्शाती है। कहानी की अपेक्षा नाट्यरूपान्तरण में जोखू के घर का दृश्य वर्णित है जो उसकी वास्तविक अवस्था दिखाने में सक्षम दिखाई दे रहा हैं- "जोखू हाथ में लोटा लिए, खांसते हुए इधर-उधर पानी ढूँढते हुए प्रवेश करता है। जोखू लंबी-लंबी सांसें ले रहा है। वह निढ़ाल होकर बैठ जाता है। उठने की कोशिश करता है, फिर बैठ जाता है। लोटा हाथ में लिए, खड़ा होने की कोशिश करता है, फिर बैठ जाता है। वह बीमार है, उसे प्यास लगी है। घड़े तक पहुँचकर खुद पानी लाकर पीना चाहता है। लेकिन घड़े तक नहीं पहुँच पाता। इधर-उधर झांकता ताकता है। गंगी को आवाज़ देता है।"[7] 'लकड़ियों को एक हाथ में लेकर, दूसरे में लोटा थामती हुई आनेवाली' गंगी का चित्र गाँव की घरवाली औरत को प्रतिनिधित्व करती है। गंगी जोखू को पानी देती -जोखू : "(मुंह में चले गए पानी का,मुंह बिगाड़ कर कुल्ला करता है।),यह कैसा पानी है? मारे बास के पिया नहीं जाता।(रुआंसा होकर) गला सूख रहा है। प्राण निकले जा रहे हैं और तू मुझे सड़ा पुआ पानी पिलाए देती है। (खीझ कर लोटा फेंक देता है।"[8]

नाट्यरूपान्तरण का दूसरा दृश्य में एक और ठाकुर के हवेली का दरवाज़ा है और दूसरी ओर ठाकुर का कुआं। घर और कुएं- दोनों का दृश्य सज्जा एक के बाद एक करके दिखाने से संप्रेषणीयता बढ़ गयी। एक ओर "चारों बेफिक्रे दरवाज़े के आगे एक ओर बैठ जाते हैं। एक जना चिलम निकालता है, दूसरा सुलगाता है और चारों बारी-बारी से दम लगाते हैं।.."[11] ठाकुर के घर की दरवाज़े पर ये चार बेफिक्र लोग जो ठाकुर के खुशामदिये और मनमौजी हैं, ठाकुर की महानता पर प्रशंसा करते हुए बातें करते हैं। कहानी में सूचित इस दृश्य को संवादबद्ध करके और अधिक प्रभावात्मक रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास शिवराम जी ने किया है। बेफिक्रों की प्रशंसा सुनकर ठाकुर ने जो जवाब देते हैं, जिससे सवर्ण लेगों का अहं और स्वार्थ की ओर इशारा करते है "अब भाई पुराना ज़माना तो रहा नहीं। कभी हमारे बाप-दादों के तलवार की बहादूरी के चरचे होते थे तो अब हमारी हिम्मत और चतुराई के। पुराने ज़माने मेंजो काम तलवार करती थी,नए ज़माने में वहीं काम रुपया करता है। न हल्ला मचता है,न खून बहता है,न आँसू गिरते हैं, न रोया-झींकी। सब कुछ चुपचाप,राज़ी-राज़ी। यही तो है धन की महिमा बुद्धि की महिमा। इसी का दूसरा नाम है-अहिंसा। पहले हमारा शस्त्र तलवार थी अब हमारा अस्त्र हिंसा है।"[10]

दूसरी ओर ये सब सुनकर-देखकर कुएँ के पास खड़ी हुई गंगी का चित्रण इस प्रकार किया कि-"दृश्य दूसरी ओर कुएं है, दरवाज़े पर लगी कुप्पी की धुंधली रोशनी वहां पड़ रही है। गंगी दबे पांव प्रवेश करती है और कुएं की जगत की आड़ में छिपकर मौके का इन्दज़ार करती हैं। दरवाज़े की ड्योढी पर चिलम पी रहे बेफिक्रे की चुप्पी आश्वस्त करती हैं तो वह खड़ी होकर कुएं की ओर बढ़ने की चेष्टा करती हैं। मगर उनकी जाग्रत उपस्थिति का आभास पाकर वापस डरकर बैठ जाती है। बीच-बीच में गंगी बड़बड़ाती हुई अपने मनोभावनाओ को जुबान पर लाती है।"[11]

कहानी की अपेक्षा नाट्यरूपान्तरण के दूसरे दृश्य में कुछ और जोड़ने का प्रयास भी शिवराम जी ने किया है। ठाकुर दरवाज़े से बाहर आकर बेफिक्रों से जाकर सोने का निर्देश देने

का दृश्य कथ्य को और अधिक प्रभावात्मक बनाती है। गंगी द्वारा पानी भरने का दृश्य कहानी से ज़्यादा प्रभावात्मक है। गंगी के मन का भय,विजय की अनुभूति आदि से शिवराम जी ने एक दृश्यजगत दर्शकों के समुख खोला दिया। गंगी द्वारा भगवान से प्रार्थना करने का दृश्य इसके लिए एक उदाहरण हैं- गंगी : "हे भगवान ! हे देवी मईया ! हे राम जी ! सहाय करो ! सहाय...जो पकड़ी गई तो पता नहीं मेरी क्या गत बनेगी ?...हे देवी मईया ! हे हनुमान जी ! हे गणेश जी ! हे महादेव !..मेरा पति बीमार है। प्यास के मारे प्राण हलक में आ गए हैं। पानी ले जा पाउ तो प्यास बुझे। प्यास बुझे तो प्राण बचें। सहाय करो भगवान...मुझ गरीब की सहाय करो।"[12]

ठाकुर द्वारा दरवाज़ा खुलने की आवाज़ सुनकर गंगी के हाथ से रस्सी छूट जाती है और घडे के कुएं के पानी में गिरती है। वह भाग खड़ी होती है। ठाकुर ने टोर्च से इधर-उधर देखकर आश्वस्त होकर लौट जाता है। बिना पानी के घर लौटे तो देखा कि जोखू वही मैला गन्दा पानी पी रहा है। ये सब कहानी और नाट्यस्थान्तरण दोनों में समान रूप से चलती हैं। लेकिन नाट्यस्थान्तरण के अन्त में शिवराम जी ने जोखू के घर की ओर दर्शक का ध्यान आकर्षित करने का सफल प्रयास किया है कि "जोखू बैठ कर आगे बढ़ता हुआ प्रवेश करता है। उसके हाथ में बदबूदार पानी का लोटा है। लोटे को पास में रखकर लेट जाता है।उठकर बैठा होता है। लोटे को मुंह से नजदीक लाता है। बदबू नाक में जाती है और मुंह बिगाड़ कर वापस रख देता है। फिर लेट जाता है। गंगी हांफती हुई खाली हाथ प्रवेश करती है। गंगी को खाली हाथ देखकर जोखू को अच्छा पानी की उम्मीद टूट जाती है। वह पूरी ताकत लगाकर उठता है ,बैठकर लोटा उठाता है और आँख मूंद कर, नाक बंद कर लोटे का सारा पानी पी जाता है। गंगी छाती फाड़कर रोती है। जोखू हिम्मत कर खड़ा हेता है। गंगी के हाथ-पैर-सिर टटोलता है। कपड़ों का हाल देखता है। उसके चेहरे पर मुस्कान आ जाती है।...जोखू गंगी से पूछती है- पानी नहीं ला पाई,कोई बात नहीं। तू ठीक-ठाक वापस लौट आई,यह बड़ी बात है। (गंगी फिर रोने लगती है।जोखू के मन में भय उत्पन्न होता है।) तुझे किसी ने देखा तो नहीं ?।"[13] नाट्यस्थान्तरण के आरंभ की तरह अन्त भी कोरस द्वारा गीत से होती है- "धुआं ही धुआं...जाति-धर्म भेदभाव...लिंग-वर्ण भेदभाव...।"[14]

गाँव की ऊँच-नीच जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों एवं उनके जीवन व्यवहारों को सफल एवं प्रभावशाली ढंग से व्यक्तकरके दर्शकों के भीतर तक हिल जाने का प्रयास शिवराम जी ने किया है। उन्होंने प्रेमचंद की इस छोटी-सी महान रचना के सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनियों के साथ उसके भीतर छिपी हुई अन्य सभी बातों को भी पकड़कर दर्शकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है। निश्चय ही उन्होंने मूल रचना के साथ न्याय किया। कहानी पढ़ते समय पाठक वर्ग जो कल्पनाएँ करते हैं, उन सबका दृश्यात्मक अभिव्यक्ति इसमें ज़रूर मिलती हैं। कहानी को पढ़ने, सुनने के साथ देखने का एक नया अनुभव देने में 'ठाकुर का कुआं' नाट्यस्थान्तरण पूर्णतः सफल हुए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ

1. शंभूनाथ द्विवेदी, अनुवाद सिद्धान्त और समग्र पत्राचार, पूजा पब्लिकेशन, कानपुर, पृ.सं.34
2. जयदेव तनेजा, हिन्दी नाटक आज-कल, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.199
3. गिरीश रस्तोगी, हिन्दी नाटक तथा रंग परिकल्पना, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं.31
4. गिरीश रस्तोगी, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं.112
5. महेश आनन्द, कहानी का रंगमंच,वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं.2
6. शिवराव, ठाकुर का कुआं, सं.पुनर्नव-जनप्रिय कहानियों का नाट्यरूपान्तरण, बोधि प्रकाशन, जयपुर, पृ.सं.11
7. वहीं.पृ.सं.10-11
8. वही.पृ.सं.12
9. वही.पृ.सं.16
10. वही.पृ.सं.15
11. वही.पृ.सं.16
12. वही.पृ.सं.17.18
13. वही.पृ.सं.19
14. वही.पृ.सं.20

सहायक आचार्य, सेंट पॉल्स कॉलेज
कलमश्शेरी, एरणाकुलम
केरल-683503

उत्तर केरल के पुलयर और तेय्यम

डॉ.सूर्या बोस

केरल के बिलकुल उत्तर भाग में बसनेवाले पुलय जाति का अपना अह्म महत्व है। 'पुलम' का अर्थ है खेत। खेती करनेवाले (खेत के मालिक नहीं) होने के कारण यह जाति पुलयर कहलाये। ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मणों के केरल-तमिलनाडु आने से पहले जाति व्यवस्था का यहाँ प्रभाव नहीं था। सब लोग समानता के साथ रहते थे। शिक्षा भी सभी लोगों को समानता से मिलती थी। हरिजनों के बीच अव्वयार जैसे कवयित्री भी मौजूद थी। लेकिन बाद में जाति-प्रथा ने पुलयर जाति को समाज ने एकदम निम्न श्रेणी में लाकर छोड़ा। वे अशुद्ध और अछूत माने गए। अतः वे सामन्तों और प्रभुओं के गुलाम हो गए। इस तरह वे 'अटियान'(गुलाम) कहलाने लगे। प्रादेशिक रूप से इनके नाम थोडा-थोडा बदल जाता है ; जैसे कुन्नत्तूर में रहनेवाले पुलयर 'कुन्नत्तूर अटियानमार्' कहलाते हैं। वयनाटु जिले के पुलयर मातप्पुलयर कहलाते हैं । माताजी (काली माता) को पूजने के कारण इनको ऐसा नाम मिला। इनके घर 'चाळा' कहलाते हैं। खेती परयर का परंपरागत काम है। औरतें (पुलच्ची) खेती के अलावा केओडा के पत्ते (screw pine leaves) से चटाई भी बनाती हैं ।

रूढ़ि-संस्कृति : गर्भधान से लेकर मृत्यु पर्यंत की गतिविधियों को लेकर पुलयर जाति के लोग कई रूढ़ियाँ मानते हैं ।

कंनल कलम पाट्टु : गर्भ के पांचवें महीने में यह अनुष्ठान करते हैं। दूर देवता की रंगोली बनाकर बीचों-बीच चितवन की एक डाली लगाकर उसके आगे पूजा तथा मान्त्रिक कर्म करते हैं। निश्चित वेशधारी में देवताओं का आवेश होता है और वह पूजा करने, नाचने, तथा गाने लगता है। 'बलिक्कला', 'तेय्याट्टु' आदि भी गर्भवती को भूत-देवताओं से बचाने के लिए करते हैं।

अरंडाट्टु : इसे प्रथम मंचीयन कह सकते हैं। लड़कों से संबंधित एक रूढ़ी है 'अरंडाट्टु'। सोलहवें साल में यह करता है । केरल के उत्तर भाग में पुलयर जाती के लोग तेय्यम (एक अनुष्टान कलारूप जो कावु या तरवाट में करता है), तिरा (उपर्युक्त) आदि में वेश धारण करते हैं । इसमें भाग लेने के लिए पुलयर बालक को तैयार करने का प्रथम पड़ाव है 'अरंडाट्टु'। इस समय बालक तेय्यम का प्रथम कोलम(वेश-भूषा) धारण करके परंपरागत नृत्य करता है। इसके बाद मुडि(शिरोभूषण) निकालकर गुरु को दक्षिणा देकर अनुग्रह लेता है।

तिरंट्टु मन्गलं : लड़की पहले-पहल रजस्वला हो जाती है, तो तिरंट्टु मन्गलं (ऋतु ब्याह) मनाते हैं। सात दिन लड़की घर के बाहर बनाई कुटी में रहती है। सातवाँ दिन सामूहिक स्नान व पूजाएँ होती है।

मन्गलं : पुलयर जाति में मन्गलं(शादी) दुल्हन के घर में मनाई जाती है। दूल्हा, दुल्हन को एक कपड़ा देता है ; उसे पुटवा कहते हैं । गाने और खाने के साथ वे शादी मनाते हैं।

अंतिम संस्कार : ये दहन या दफ़न दोनों करते हैं। दफ़न है तो दूसरे ही दिन रात को उसी जगह भद्रकाली देवी की रंगोली बनाते हैं। इसे भद्रकालीकळं कहते हैं। वहाँ पूजा की जाती है । दहन है तो मिट्टी डालने के बाद उस जगह मनुष्य का रूप और उसके नीचे भद्रकाली का रूप रंगोली डालते हैं और पूजा करते हैं।

कूळिकेट्टु : मृत्यु के एक साल के अन्दर मृत व्यक्ति की संकल्पना में वेश धारण कर प्रस्तुत करनेवाला नृत्य रूप है- कूळिकेट्टु । वेशधारी मृत व्यक्तियों के रिश्तेदारों से मृतक का स्वत्व लेकर बातें भी करते हैं। इस समय 'पोलिंजा मुत्तन' (मृत पिता) से संबंधित गाने भी वे गाते हैं। यह कोषिकोड़ जिले में ज़्यादा होता है। कण्णूर जिले में इसे 'पेन केट्टल' भी कहते हैं। यह प्रेत पूजा का एक नमूना है।

देवता संकल्पना : पुलयर जाती के देवता का मंदिर जैसा स्थान है- 'कोट्टम'। यह ज़्यादातर पेड़ों के तले होते हैं। कही-कहीं 'कोट्टम' नामक गर्भगृह भी बनते हैं। वहाँ देवताओं के बिम्ब नहीं बल्कि तलवार-ढाल जैसे शस्त्र पीठ में रखे होते हैं। इनकी कला-परंपरा भी देवता संकल्पना से जुड़ी हुई है। जैसे कन्नल कलम पाट्टु, कूळिकेट्टु, अरडाट्टु आदि।

लेकिन वे इसे महज़ कला नहीं मानते ; उनके लिए यह अनुष्टान है।

पुश्तैनी कला : परयर ही नहीं, उत्तर केरल के सभी निम्न विभाग पुश्तैनी कला से संपन्न है। ऐसे कलास्प प्रकृति से बिलकुल जुड़े हुए हैं। कला के लिए इस्तेमाल सामग्री कपड़े लेकर चेहरा तथा शरीर रंगने के लिए उपयुक्त सभी चीजें अपने आस-पड़ोस से ही मिल जाती हैं। तेय्याट्टम, मारियाट्टम आदि इस तरह के प्रमुख पुश्तैनी कलास्प हैं।

तेय्याट्टम : उत्तर केरल के अनुष्टान कलाओं में तेय्याट्टम का प्रमुख स्थान है। दैवी या देव का तत्भव स्प है 'तेय्यम'। दैवी शक्तिका भास यहाँ प्रतीत होता है। पुलयन, मलयन, वण्णान, वेलन, मविलन आदि जाती के लोग तेय्याट्टम करते हैं। 'कोट्टम' या 'स्थानं' नामक इनके देवता स्थानों में तेय्याट्टम होता है । सामान्य रूप में इसे तेय्यम कहते हैं। देवताओं के वेश में तेय्यम स्वयं देवता बन जाता है । तेय्यम भक्तों का दुखड़ा सुनता है और समाधान देती है। तेय्यम देवता की बानी भक्तों को साँत्वना देता है । ऐसा माना जाता है कि इस समय में वेशधारी में देवता का आवेश होता है। समाज के ऐश्वर्य तथा मानसिक तृप्ति के लिए यह बानी सिद्धौषधि से ज्यादा महत्वपूर्ण काम करता है।

तेय्यम की मुटि(शिरोभूषण या मुकुट) से लेकर कपड़े, आभूषण सभी कुछ एक दूसरे से थोडा-बहुत अलग होता है। यह वेश की संकल्पना पर आधारित रहता है।

तेय्यम जिस दिन होता है उसके एक दिन पहले तोट्टम या वेल्लाट्टम होता है। इसमें तेय्यम वेश धारण के लिए चुने गए व्यक्तिथोडा वेश वगैरह करके अनुष्ठान गीत गाते हैं। थोडा नृत्य की चाल-चेष्टा भी करते हैं। उस समय जो गाना देवताओं की स्तुति में गाया जाता है उसे 'तोट्टमपाट्टु' कहते हैं। भगवती, काली, चामुंडी आदि की तेय्यम प्रमुख है। श्मशान की देवता, रोग़ देवता, ग़ाव की देवता, पशु-नाग संकल्पना की देवता आदि भी इसमें आते हैं। इसके अलावा इतिहास-पुराण के पात्र, मृत पूर्वज, स्थानी वीर आदि पुरुष देवताओं की भी तेय्यम होता है। शैव-शक्तिकी वे ज्यादा पूजा करते हैं। तेय्यम में भी इसी की प्रतिक्रिया हम देख सकते हैं। भैरवन, पोट्टन, गुलिकन, कुट्टिच्चात्तन आदि शैव तेय्यम बहुत ही प्रतिष्टित और प्रख्यात है।

प्रतिष्ठित मृत पूर्वजों के नाम पर होने वाले तेय्यम में प्रमुख है- कारि कुरिक्कल य पुलिमरंञा तोण्टच्चन। वैष्णव संकल्पना के तेय्यम पुलयर विरले ही करते हैं। 'विष्णुमूर्ति' ऐसा एक तेय्यम है ।

पोट्टन तेय्यम : उत्तर केरल के पुलयर द्वारा करनेवाले तेय्यम स्पों में 'पोट्टन तेय्यम' बहुत ही महत्वपूर्ण है। पोट्टन का अर्थ है- मूर्ख, गंवार य विदूषक। श्री शंकराचार्य की परीक्षा लेने के लिए श्री परमेश्वर ने चंडाल का रूप धारण किया था। वही चंडाल स्पी श्री परमश्वर ही पोट्टन तेय्यम है। इसमें चंडाल को पुलयन बताया गया है।

पोट्टन दैवं की पूजा करनेवालों में पुलयर से लेकर ब्राह्मण तक है। इससे ससंबंधित एक गीत पोट्टन तेय्यम की स्तुति के बीच है। वह इस प्रकार है :- पत्तिल्लम पुलयर तन्ना पूजयुम तिरयुं कोंडू पत्तियोडेञ्ञु पिन्ने / पुलिंगोत्तु वातिल्माडम पुक्कितु नेरम मय्यन/ पुतुमयोडरूलिच्चेय्तु निक्कट्टे इविडयेन्नु/ निनचोरू स्थानं नल्की / नित्य कर्मंगल एल्लाम नीतियिल चेय्तु कोल्वान / उत्तमन पुलिंगोत्तु नायरक्कु कल्पिछु पिन्ने ।

अनुवाद : दस पुलय कुलों की पूजा-तिरा अनुष्टान स्वीकार करके पुलिंगोत्त् नामक जगह के एक घर के बाहरी दरवाज़े तक पहुँच गए थे पोट्टन तेय्यम । तब वहाँ एक मुसलमान पंडित मिले। उन्होंने देवता से वहीं रहने का अनुरोध किया और मस्जिद के अधीनस्थ कुछ जगह उन्हें रहने केलिए दे दिया। नित्य कर्म नीतिपूर्वक करने के लिए एक गुनी व्यक्ति पुलिंगोत्त नायर को नियोजित किया।

पोट्टन तेय्यम के आराधना स्थानों को कावु,तानं, अरा, पल्लियरा, मुन्टया, कोट्टम आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है। कभी-कभी खेतों और मैदानों में भी तात्कालिक पल्लियरा (देवस्थान) बनाकर उसमें दीप तथा पीठ लगाकर देवता की संकल्पना कर तेय्यम करते हैं।

वेश-भूषा : पोट्टन तेय्यम की वेश-भूषा निराला और आकर्षक है। नारियल के कच्चे पत्ते से धोती जैसे पहनते हैं। इसको ओलियुटुप्प कहते हैं। तलाप्पाली से सिर ढकते हैं। उसके ऊपर 'तलयोली' या 'कोय्योला' धारण करते हैं। कान छिपाकर कच्चे नारियल के पत्ते का ही नकली कान लगाते हैं। मनशिला(एक पीले रंगवाली धातु) और

मैनसिल(मुल्मे की वार्निश, हल्का सिंदूरी) से चेहरा सजाकर काजल लगाते हैं। छाती और हाथों में चावल से बना रंग से रंगाते हैं। लकड़ी और फूल से बने आभूषण भी धारण करते हैं।

मुखौटा : पोट्टन तेय्यम तीन मुखौटे बारी-बारी से लगाते हैं। शिव, पार्वती और नंदिकेश के अंश रूप है यथाक्रम पुलपोट्टन, पुलच्चामुंडी और पुलमारुत्तन्। एक ही वेशधारी ज़्यादा देर तक शिवजी का और कुछ-कुछ देर के लिए पार्वती और नंदिकेश के मुखौटे सन्दर्भ के अनुसार लगाते हैं।

मेलेरी : पोट्टन तेय्यम का अग्नि-नृत्य लाजवाब है। दहकते अंगार में गिरना, पड़े रहना, तथा उसमें नाचना इस तेय्यम की ख़ासियत है। इमली, चंपा जैसे पेड़ों की लकड़ी जलाकर बनाई गयी इस अंगार को 'मेलेरी' कहते हैं।

तोट्टम पाट्टु : 'स्तोत्र' का तत्भव रूप है 'तोट्टम्'। संकल्पना, पुनसृष्टि, प्रत्यक्षीकरण आदि अर्थों में भी यह व्यवहृत होते हैं। यह देवताओं के स्तुतिगीत है। इसमें देवताओं के इतिवृत्त, देवताओं के रूप तथा चाल-चलन की वर्णना आदि होती है। चंडाल रूपी श्री परमश्वर और श्री शंकराचार्य के बीच का संवाद 'पोट्टन तेय्या तोट्टम' का प्रमुख अंग है। देखिये- "नांगल कोत्थ्यालुम ओन्नल्ले चोरा/निन्गले कोत्थ्यालुम ओन्नल्ले चोरा /अविड़ेक्कु नांगलुम नींगलुमोक्कुम/ पिन्नेंतिनी चोव्वरू कुलं पिशक़न्न"

अनुवाद : मुझपर चोट करे तो आता है खून/तुझ पर चोट करे तो भी आता है खून/ ईश्वर के आगे हम और तुम एक समान/ फ़िर क्यों स्वामी जाती पर झगड़े ।। पोट्टन तेय्यम के उद्भव के बारे में भी तोट्टम पट्टु में व्यक्त किया है ।

देखिए - कलिच्चुटन चिरिच्चुम् नाविन्निटरच्चयुम् काणुन्नोर्क्क/ रसिच्चुपोरुन्न कोलम् धरिच्चुटनन्नु नन्नाय/कैलासं वलत्तुवेच्च् कलाधरन् पादम् कूप्पि/मलनाटु कान्मतिन्नाय वटिवोटु पोन्नु दैवम्

अनुवाद : हँसी-खेल में फ़िसलते ज़बान/रूप से आता है मज़ा, ऐसा भेस पहनकर/करके परिक्रमा कैलास/का कलाधर ने किया पादांजलि/ मलनाडु देखने आये सीधे भगवन ।। (मलनाडु का मतलब केरल)

पोट्टन तेय्या तोट्टम में चाळा (पुलयर जाती का घर) का वर्णन है । उसमें अद्वैत दर्शन का स्पष्ट झलक देखने को मिलते हैं ।

देखिये -अरुमयिल चाळ चमच्चितु पण्टे/आचार्यन तानुमळ्ळु वरच्चान/ उरुमिच्च तूणव नालुम निरत्ति /उनपतु चाणुळ्ळोरू ज़िक वच्चान/वातिलुमोन्पतु वेच्चोरो भागे/वारियुम् तट्टि वळरकोलुं वीतु/वारिप्पुरमेयोरोलयुम् केट्टि /उत्तमुकलिलोरोटुम् कमिच्चान्/आधारमेन्तुपोल् चाळय्क्कुरप्प /अइपत्तोन्नाणि तरच्चतुरप्प/अरिम पणियेल्लाम् सूक्ष्मिच्चु कण्टाल्/ पेटियाकुन्न पोळिन्जुपोमेन्न्

अनुवाद : प्यार से कुटिया जो बनाया पहले/ माप तो दिया आचार्य ने / एक साथ खम्भा चार लगाये / छः कदम का कुटिया बना /लगाये बातरी का दरवाज़े नौ / छप्पर बनाया /पत्तों से ढका / किसके आसरे कुटिया टिके / इकावन कील की है आसरा/ ठीक से देखें प्यारा जुगाड़ /तो लगता है डर, कब टूट जाये।।

यहाँ कुटिया मनुष्य शरीर का प्रतीक है। कितना नश्वर है शरीर। मन से सारे कर्मों का त्याग कर , इन्द्रियों पर काबू करके नौ द्वार वाले घर में सब से असंपृक्त देही बस रहा है। अद्वैत का यही भाव श्री शंकराचार्य के 'गीता भाष्य' में भी देख सकते हैं। भक्तों का मानसिक उद्धार का प्रयास यहाँ स्पष्ट होता है।

निष्कर्ष : पुलयर जाती कृषक संस्कृति से पूर्णतः जुड़े होने के कारण केरल की प्राचीन संस्कृति और उसके सभी आयाम इनकी ज़िन्दगी में अंतर्लीन है। ख़ासकर उत्तर केरल के पुलयरों का जीवन उर्वरता से संबंधित अनुष्ठान और रूढ़ियों से भरा पड़ा हैं। इनके प्राचीन के साथ-साथ प्राकृत लगते आराधना-पूजा बहुत ही निराले हैं। कला-प्रदर्शन और नृत्य-संगीत आदि में इनके रुचि इनकी संस्कार में निर्लिप्त है।

आज भी उत्तर केरल के पुलयर की सामाजिक और आर्थिक स्थिति संकटग्रस्त है। शिक्षा के क्षेत्र में भी वे ज्यादा आगे नहीं आ रहे हैं। फिर भी शताब्धियों से वे जिस संस्कृति के संरक्षक है; उस अनमोल निधि का वे डटकर रक्षा कर रहे हैं।

अतिथि प्रवक्ता, श्रीकृष्णा कॉलेज,
अरियन्नूर पि.ओ., गुरुवायुर 680102

कविता

मोची

डॉ. अंबिली.टी

मोची हूँ मैं निरीह आदमी
मेरा काम है मरम्मत जूतों का
झुलसती गर्मी हो या ठिठुरती सर्दी
हाज़िर हूँ मैं किनारे सडक के।

मैं तो रैदास का परिवारवाला
बढाता हूँ शान- शौकत तुम्हारी
पर तुम तो देते हैं तिरस्कार- गालियाँ
फिर भी करता हूँ काम ईमानदारी का।

लेता हूँ भार परिवार का
बुनता हूँ सपने धागों से
तल्लीन हूँ काम में पूर्ण समर्पण से
भूल जाता हूँ मैं अपना सुख।

खाता हूँ कभी कभी पुलिस की गाली
गुंडों का धमकाना भी बारंबार
फिर भी करता हूँ मैं अपना काम
हिम्मत का हथौडा पकडकर।

जूता ही मेरे लिए रोटी है
जूता ही मेरे लिए सबकुछ
मरम्मत को मिलते ही पहले सोचता हूँ
फिर तल्लीन हो जाता हूँ प्रिय कर्म में।

फटे पुराने जूतों को
नया करता हूँ मरम्मत से
खींच खींच धागे को बारंबार
जोश भरता हूँ अपने में ।

तुम तो झगडते हो मुझसे
फेंक देते हैं पैसों को
निरीह प्राणी बनकर बैठता हूँ
दया दृष्टि की आशा से।

जूता सिलाना एक कला है
सावधानी का काम है सुई धागे का
आश्वासन देता हूँ मैं ग्राहकों को
कि ज़रा भी न करना फिक्र।

तुम तो मुझे दलित कहते हो
पर मेरे सामने सब एक समान
फटती हैं उँगलियाँ हथौडे की मार से
फिर भी न हटता हूँ मैं अपने काम से

मैं वंचित पीडित मानव
बनियेवालों द्वारा भी
करता हूँ काम बेखूबी से
तो भी न मिलते पूरे पैसे।

अनपढ हूँ मैं दुनिया ही पाठशाला
चुप्पी साधकर बैठता हूँ।
सोचकर कि चुप्पी का अपना महत्व है
भविष्य गढने में तल्लीन हूँ ।

सह आचार्या, हिन्दी विभाग
सरकारी महिला महाविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम

समकालीन असमिया उपन्यास 'इयत एखन अरण्य आसिल' में पारिस्थितिक चिंतन

सागर छेत्री

प्रकृति और मानव एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। प्रकृति के बिना मनुष्य या किसी भी प्राणियों का अस्तित्व संभव नहीं है। प्रकृति मानव जीवन की जितनी भी अवश्यकताएँ एवं जरूरतें है। उन सभी को पूरा कर सकती है। हम इन्हीं आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति से जरूरत से ज्यादा सामग्रियों का ग्रहण करते जा रहे हैं, जिससे हमें भविष्य में भारी मात्रा में कीमतें चुकनी पड़ सकती हैं। आज भूमंडलीकरण, औद्योगीकरण व बाजारवाद के चलते सबसे ज्यादा नुकसान पर्यावरण का की हुआ है। हम मूर्ख लोग अपनी आँख मूँदे पर्यावरण का दोहन जिस रफ़्तार से कर रहे हैं भविष्य में उसका भार हमें ही पड़ने वाला है। पारिस्थितिक चिंता आज के दौर में हमारे लिए अत्यंत आवश्यक विषय बन चुका है। इससे नजरें फेर लेना हमारे लिए मूर्खता का काम होगा। आज लोगों की मांग इतनी बढ़ गई है कि जिसका सीधा असर प्रकृति पर पड़ रहा है। आज हम आतंकवाद की समस्या से उतने त्रासिद नहीं हैं जितना पर्यावरण की समस्या से है। आज विश्व सारे देश अपनी ताकत दिखाने में लगे हुए हैं, जिसके कारण परमाणु बॉम एवं परमाणु परीक्षण किए जा रहे हैं। लेकिन इसका परिणाम कितना खतरनाक हो सकता है किसी ने सोचा है! इसका उदाहरण हम 6 और 9 अगस्त, 1945 ई. को जापान के दो शहर 'हिरोशिमा' और 'नागासाकी' में अमेरिका द्वारा गिराए गए परमाणु बॉम पर देख सकते हैं। वहाँ हुई परमाणु बॉम बारी के बाद वहाँ आज भी जन्म लेते बच्चे विभिन्न रोगों से ग्रसित होते हैं। इस घटना पर आधारित हमारे भूतपूर्व प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी जी की एक कविता 'हिरोशिमा की पीड़ा' है। जिसमें आप लिखते है- "मैं सोचने लगता हूँ कि/ जिन वैज्ञानिकों ने अणु अस्त्रों का/ आविष्कार किया था/इतिहास उन्हें कभी माफ नहीं करेगा।"[1] इसमें उन्होंने बताया है कि जिन वैज्ञानिकों ने परमाणु बॉम को बनाया था। हिरोशिमा में हुई उस भीषण तबाही के बाद वह कैसे चैन से सोये होंगे। उनके हाथों इतनी भीषण तबाही हुई उसके बाद भी उन्हें कोई अनुभूति हुई? अगर हुई तो समय उन्हें कटघरे में खड़ा नहीं करेगा और नहीं हुई, तो इतिहास उन्हे कभी माफ नहीं करेगा।

19वीं शताब्दी से आधुनिक असमिया साहित्य का काल प्रारंभ होता है, जिनमें 'अरुणोदय' (1846 ई.) पत्रिका की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह पहली असमिया पत्रिका थी। इसके बाद असमिया छात्रों की कलकत्ता समूह की साहित्यिक पत्रिका 'जोनाकी' (1889 ई.) प्रकाशन में आई, जिसने असमिया साहित्य में युगांतकारी आंदोलन की शुरु आत की। यह असमिया साहित्य का रोमांटिक युग था। रोमांटिक साहित्य में, विशेषकर कविताओं में प्रकृति का चित्रण मिलता है। इनमें नगेन सइकिया, चंद्रा कुमार अग्रवाल, लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ, रघुनाथ चौधरी आदि आते हैं।

आजादी के बाद कई असमिया कवि उभरकर सामने आए जिन्होंने पर्यावरणीय मुद्दे और मानव प्रकृति से संबंधित मुद्दों पर बात की। जिनमें- नवकान्त बरुआ, हिरेन भटचार्य, कुशल दत्ता, सौरभ कुमार चालिहा, अपूर्व कुमार शर्मा आदि हैं। पर्यावरण की समस्या आज के दौर में एक महत्वपूर्ण समस्या बनकर उभरी है। इसलिए उसके प्रति रचनाकारों की नजर जाना स्वाभाविक ही है। प्राचीन युग में देखें तो उनमें हमें बहुत सी रचनाएँ ऐसी मिलती हैं जिसमें कहीं न कहीं पर्यावरण संरक्षण या प्रकृति को महत्व दिया गया है। लेकिन उन रचनाओं में और अभी की रचनाओं में जमीन आसमान का फर्क मिलता है। क्योंकि आज के दौर में पर्यावरण की जैसी स्थिति है उस समय वैसी नहीं थी। इसलिए कहा गया है- "साहित्य समाज का दर्पण होता है।" अर्थात् वातावरण जैसा होता है साहित्य में भी वैसी ही विशेषताएँ उभरकर आती हैं।

इसी प्रकार समय के साथ-साथ कविताओं की तरह उपन्यासों में भी पर्यावरणीय चेतना को लेकर लिखे जा रहें हैं। कुछ समकालीन असमिया उपन्यासों की बात करे तो उनमें हैं- सैयद अब्दुल मलिक के 'प्रेम अमृतर नदी'

(1999), गोविंद कुमार खाउन्द के 'रुमयांग'(2016), पंकज गोविंद मेधी के 'चराई चुबुरी' (2016), अनुराधा शर्मा पुजारी के 'इयात एखन अरण्य आसिल' (2018), जयंत माधव बोरा के 'इयात एखन हाबी आसिल' (2021) आदि प्रमुख हैं। नीचे हम अनुराधा शर्मा पुजारी द्वरा रचित 'इयात एखन अरण्य आसिल' उपन्यास के आधार पर पारिस्थितिक चिंतन पर विस्तृत रूप से चर्चा करेंगे- 'इयात एखन अरण्य आसिल' उपन्यास में पारिस्थितिक चिंतनः उपन्यास में मुख्य रूप से 'आमचिंग' और पंजाबारी इन दो अंचलों का चित्रण है। इसमें इस बात का वर्णन है कि 'आमचिंग' वन को कैसे उच्छेद किया गया, कैसे यह एक वन अभयारण्य से जन अभयारण्य में तब्दील हो गया, कैसे लोग अवैध रूप से वहाँ आकर रहने लगे। परिणामस्वरूप वहाँ के जंगली जानवरों को भोजन की समस्या होने लगी। चारा और आश्रय की कमी के कारण हाथी तथा अन्य जंगली जीव भोजन की तलाश में लोगों के घरों की ओर पलायन होने लगे हैं। क्योंकि जंगलों में उन्हे अब खाने के लिए उचित मात्रा में आहार नहीं मिल पा रहा है। इसका एक उदाहरण उपन्यास में इस प्रकार चित्रित है- "लोगों ने पूरे आमचिंग वन पर कब्जा कर लिया है। व्यापारी लोग जंगली केले के पौधे लाकर बाजारों में बेच रहे हैं, जो हाथियों का भोजन हुआ करता था। तभी हाथी इस इलाके में आ गये और खेतों में धान खाने लगे। जो जमीन कभी कृषि योग्य भूमि थी वह अब मकानों में तब्दील हो गई है।"[2]

प्रकृति का दोहन होते देख लेखिका को भविष्य की चिंता होती है। आज जिस तरह से नगरों में फैक्ट्री, यान वाहन में बढ़ोतरी के चलते प्रदूषण हो रहा है, जिससे शुद्ध ऑक्सीजन की मात्रा ह्रास होने लगी है। इसे रोकने के लिए वन व आस-पास के पेड़-पौधों को संरक्षित रखना अत्यंत आवश्यक है। लेखिका उपन्यास की एक पात्र राजबंशी के जरिए कहलाती है- "यह अभयारण्य हमारे महानगर की सांस है।"[3] कुछ लालची लोग अपने लघु स्वार्थ के लिए जंगलों से पेड़ काटकर शहरों में बेच मुनाफा कमा रहे हैं। लेकिन यहाँ पर सवाल खड़ा होता है कि इतनी कड़ी पहरेदारी के बावजूद उनकी नाक के नीचे से चीजों को चोरी कर ले जाना कैसे संभव है? इसमें भी वन विभाग, पुलिस, प्रशासन और राजनेता सभी की भागीदारी बराबर हैं। इसका एक उदाहरण इस उपन्यास में कुछ इस प्रकार से है- "कुछ दलालों, ठेकेदारों ने इस वन क्षेत्र को नष्ट कर दिया हैं। पुलिस प्रशासन, वन विभाग, राजस्व मंडल, मंत्री और विधायक अभयारण्य के विनाश के मूल खलनायक हैं।"[4] नेता अपने स्वार्थ के लिए वोट पाने के हेतु लोगों को बिना जमीनी पट्टा व कागजात या फर्जी दस्तावेजों के आधार पर अवैध तरीके से रहने देते हैं। लेकिन हाई कोर्ट के आदेश के मुताबिक जब वहाँ के लोगों को घर खाली करने को कहा जाता है तो लेखिका के घर में काम करने वाली महिला 'राणु' प्रशासन पर सवाल उठाती हुई कहती है- "जिन पहाड़ियों पर माधुरी ने अपना घर बनाया है, वे अभयारण्य का हिस्सा हैं, अगर यह अवैध है तो क्या इतने समय तक प्रशासन नाम की चीज़ अस्तित्व में नहीं थी? पिछले दस सालों में इस पहाड़ पर कई नई मस्जिदें, मंदिर, गाँव बस गए यह कैसे संभव हुआ? वोट के समय नेता इन पहाड़ वासियों के पास वोट मांगने जाते हैं।"[5] लेकिन उसी वन विभाग में काम करने वाले कुछ एक ऐसे वन कर्मी भी है जो अपना काम ईमानदारी से करते हैं। जिनकी वजह से ही यह वन संरक्षित है। ऐसे कर्मचारी जो सच्चे प्रकृति प्रेमी होते हैं। वे सिर्फ वेतन पाने के लिए अपना काम नहीं करते, उनमें जंगल, पेड़-पौधे, वहाँ रहने वाले पशु-पक्षियों के प्रति आंतरिक प्रेम होता है। वह अपना काम बखूबी से निभाते हैं। वन विभाग ऐसे निस्वार्थ प्रकृति प्रेमियों के लिए ही संरक्षित है। इसका उदाहरण 'रंजन', 'राजबंशी' जैसे पात्रों के माध्यम से देखने को मिलता है। जब लेखिका राजबंशी के साथ जंगल देखने जाती है, तो उन दोनों के बीच आपस में कई बातें होती हैं। लेखिका को राजबंशी के द्वारा प्रकृति से संबंधित कई जानकारी मिलती हैं। प्रकृति के प्रति उनके प्रेम को देखकर लेखिका कहती है- "आप न केवल वन विभाग के कर्मचारी हैं, बल्कि प्रकृति प्रेमी भी हैं। यदि वन विभाग के प्रत्येक अधिकारी में आपकी तरह प्रकृति के प्रति प्रेम और भावना तथा मानव कल्याण की चिंता होती तो आज ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होती।"[6] तब राजबंशी कहती है- "क्या करूँ मैडम, पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं की असहाय हालत देखकर ऐसा लगता है जैसे मैं एक कमजोर पिता हूँ जो अपने बच्चों को सामान्य सुरक्षा भी प्रदान नहीं कर पा रहा हूँ! अगर यह भावना न होती तो मैं शांति से अपना काम कर पाती। मैं अपने वेतन से अपना भरण पोषण कर रही हूँ; लेकिन जिनके लिए मुझे पैसे मिल

रहें हैं, उन्हे मैं सुरक्षा नहीं दे पा रही हूँ- इससे ज्यादा दुःख की बात और क्या हो सकती है?"[7]

वनों में अवैध कारोबार चलता आ रहा है। वन विभाग में काम करने वाले कुछ वफादार लोग यह जानते हुए भी चुप रहते हैं ताकि उनकी नौकरी न चली जाये। इसका प्रमाण हम रंजन जैसे वनकर्मियों में देख सकते हैं। उपन्यास में इसका एक चित्रण इस प्रकार है- "हमारी आंखों के सामने शेगुन के पेड़ों का बगीचा नष्ट हो गया, हिरण और जंगली खरगोश मर गए। उसकी जगह अब एक गाँव बस चुका है, एक शहर बन चुका है। इंटेलिजेंस पावर लाइन स्थापित हो गई, हम कुछ नहीं कर सके। यह बात हमारे वन विभाग में हर कोई जानता है, लेकिन अपनी नौकरी बचाने के लिए हर कोई चुप है।"[8]

हमारे भारतीय संस्कृति में प्रकृति को भगवान का रूप माना जाता है। लेकिन आज धर्म के नाम पर लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु जगलों को नाश कर मंदिर-मस्जिद का निर्माण किए जा रहे हैं। बड़े-बड़े पेड़ों की कटाई कर मकान बनाये जा रहें है और आँगन में तुलसी के पौधे लगा कर पूजा कर रहे हैं। इसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार से मिलता है- "ये लोग जिन्होंने मंदिर-मस्जिद बनाकर ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया है- क्या वो लोग वास्तव में धार्मिक हैं? क्या धर्म हमें दूसरों का हक छीनना सिखाता है? उन्होंने बड़े-बड़े पेड़ काटकर जमीन साफ कर घर बना लिया है और तुलसी का पौधा लगाकर पूजा कर रहे हैं।"[9] यदि हम हिंदू धर्म में ईश्वर के प्रतीकों पर नजर डालें तो देवी-देवताओं के वाहनों में जानवरों को प्रतीक के रूप में देख पाते है। उदाहरण के लिए शेर को दुर्गा का, चुहा को गणेश का, हंस को स्वस्वती का, बैल को शिव का और गाय को लक्ष्मी का प्रतीक माना जाता है। वर्तमान समय में जिस तरह से इंसान जंगली जानवरों के प्रति क्रूर होता जा रहा है। अतीत में जिन लोगों ने यह प्रतीक बनाए वे अच्छी तरह जानते थे कि भविष्य में एक दिन ऐसा आएगा जब हम जंगली जानवरों के प्रति क्रूर हो जाएँगे। इसके पीछे कारण यह रहा होगा कि ऋषि-मुनियों ने धर्मग्रंथ लिखते समय इन जंगली जानवरों को देवी-देवताओं के प्रतीक के रूप में उल्लेखित कर हमें ज्ञान देना चाहे होंगे। राजबंशी कहती है- "विभिन्न देवी-देवताओं के वाहन- सिंह, बाघ, हाथी, मोर, बैल, गाय आदि जंतुओं में देवत्व का आरोप किया गया हैं। अवश्य ही कुछ ऋषि-मुनियों ने रक्षा की दृष्टि से इंसानों को ज्ञान देने के लिए यह सब धर्म-ग्रंथों में इन बातों को उल्लेख कर दिया गया था। क्योंकि वह लोग जानते थे कि पृथ्वी का भविष्य इंसानों के हाथों सुरक्षित नहीं हैं।"[10] आगे राजबंशी कहती है- "मेरे लिए यह वन ही मंदिर है। वन की यदि थोड़ी भी सेवा कर पाती हूँ तो मैं यह मानूंगी कि मेरा धर्म भी सफल होगा।"[11] लेखिका राजबंशी के इन बातों में तार्किकता देखती है। आगे लेखिका कहती है- "किसी धर्म में प्रकृति को नष्ट करने के लिए नहीं सिखाया गया है।"[12] अतः केवल हिन्दू धर्म में ही नहीं, कोई भी धर्म को उठाकर अगर देखा जाए तो किसी में भी प्रकृति को नाश करना नहीं सिखाया गया है।

उपन्यास में हमें प्रेम का चित्रण भी देखने को मिलता है लेकिन इसके साथ पर्यावरणीय संवेदनशीलता भी जुड़ी हुई है। लेखिका की सहेली 'ज्योति' की बेटी 'चंदा' बेंगलुरु में रहती है। वह एक मद्रासी लड़के 'रघु' के संपर्क में आती है और फिर दोनों को प्यार हो जाता है। ये दोनों 'मदर नेचर' नाम के फाउंडेशन से जुड़े हैं। इस संस्था के संस्थापक 'तन्मय बरुआ' हैं। इस 'मदर नेचर' का उद्देश्य प्रकृति की रक्षा करना है। तन्मय बरुआ असम से हैं लेकिन बेंगलुरु में रहते हैं। उन्होंने सात साल पहले अपना राज्य छोड़ प्रकृति की रक्षा के लिए अकेले संघर्ष किया था। लेखिका को यह जानकार हर्ष होती है कि एक कॉर्पोरेट पिता और एक खबसूरत माँ की एकलौती बेटी प्रकृति संरक्षण में शामिल है। वह मानती है प्रकृति ने ही रघु और चन्दा को एक किया है। उन्हें धन-दौलत कुछ भी नहीं चाहिए। आज के दौर में ऐसे ही कुछ लोग आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा बनते हैं और यही लोग भविष्य में पर्यावरण को बचाए रखेंगे।

लोगों के घर तोड़े जाने से बेघर होते लोगों को देख 'राणु' लेखिका से पूछती है- लोग बड़े है या पेड़? तब लेखिका कहती है- "पेड़ और जंगल इंसानों से भी ज़्यादा कीमती है! अब रेगिस्तानी देश भी इन सभी बातों को समझ गए हैं और पेड़-पौधे लगाने के लिए करोड़ों रुपए खर्च कर रहे हैं। बारिश के लिए आसमान में कृत्रिम बादल बनाए जा रहे हैं; वर्तमान वृक्ष एवं वन मूल्यहीन हो गये हैं।

एक दिन मनुष्य को इसका परिणाम भुगतना पड़ेगा। तब तक हमारे बच्चों को सांस लेने के लिए ऑक्सीजन की बोतलें अपने कंधों पर उठानी पड़ सकती हैं।"[13] यहाँ लेखिका पेड़ों को इंसानों से भी बड़ा बताकर प्रकृति की रक्षा की बात करती है।

अंत में लेखिका 'माधुरी' से कहते हुए पर्यावरण संरक्षण के लिए यह सुझाव देती हैं कि एक पेड़ काटने के बदले तीन पेड़ लगाया जाये। माधुरी इस विरान और सूखे पड़े पहाड़ को पहले जैसा हरा-भरा बनाने के बारे में सोचती है, वह चाहती है कि यह पहाड़ फिर से पशु-पक्षियों से भर जाए। माधुरी को उम्मीद है कि उसे पौधे लगाते देख आस-पड़ोस के लोग भी जागरूक होंगे। उसकी यह सोच काम कर जाती है और उसे पेड़ लगाते देख आस-पास के लोग भी पेड़-पौधे लगाने लग जाते हैं। एक उदाहरण देखिए- "हमारे पहाड़ को उसकी मूल स्थिति में लौटाया जाना चाहिए। मुझे जामुन-नीम के पेड़ लगाते देख विष्णु और मंचूर भी आँगन में पेड़ लगाएँगे। फिर पहले वाले पक्षी लौट आएंगे। निरंजन ने बाजार से आम और अमरूद के पौधे भी खरीद लाया हैं।"[14]

निष्कर्ष : इस प्रकार उपन्यास में लेखिका ने प्रकृति को होने वाले नुकसान के साथ-साथ इसके बारे में जागरूकता कैसे लाई जा सकती है, इसका भी चित्रण किया है। आज पैसों की भूख के कारण कुछ लोग प्रकृति को नष्ट कर रहे हैं तो कुछ लोग प्रकृति को बचाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसे ही कुछ लोगों के लिए हमारा पर्यावरण सुरक्षित है। आज आवश्यकता इस बात की है कि पेड़ों और जंगलों से प्राप्त उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए आम लोगों के विचार और दृष्टिकोण को इस प्रकार विकसित किया जाए कि वनों और प्रकृति की उपयोगिता के प्रति उनकी रु चि बढ़े। यदि हमने प्रकृति को अपने से अलग करने का प्रयास किया तो इस बढ़ते प्राकृतिक असंतुलन का परिणाम देश के लिए ही नहीं बल्कि पूरे वि ा के लिए अत्यंत घातक साबित हो सकता है। इसलिए आज पर्यावरण को संतुलित रखने की जरूरत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रंथः पुजारी, शर्मा, अनुराधा. (2022). इयात एखन अरण्य आसिल.गुवाहाटीः बनलता प्रकाशन

सहायक ग्रंथः सुमेष, एस.ए. (2020) समकालीन हिंदी साहित्य में पर्यावरण विमर्श. कानपुरः अमन प्रकाशन

इल्लत, प्रभाकरन हेब्बर. (2019).पर्यावरण और समकालीन हिंदी साहित्य. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन

कोल्हरे, दत्ता. (2020). हिंदी साहित्य मे पर्यावरण संवेदना.नई दिल्लीः सामयिक प्रकाशन

वनजा, के(2020). साहित्य का पारिस्थितिक दर्शन. नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन

राजखुवा, अरबिन्द (2021) असमिया प्रकृति-साहित्य आरू सौम्यद्वीप दत्त. गुवाहाटीः बांधव प्रकाशन

खाउंड, गोबिंद कुमार. (2016). रुम्याँ. गुवाहाटीः बनलता प्रकाशन

बरा, जयंत माधव. (2021). इयात एखन हाबी आसिल. गुवाहाटीः ज्योति प्रकाशन

मलिक,सैयद अब्दुल. (1999). प्रेम अमृतर नदी. गुवाहाटीः स्टूडेंटस स्टोर

पंकज, गोविंद मेधी. (2016). चराई चुबुरी. गुवाहाटीः बनलता प्रकाशन

ग्रन्थ सूची

1. http://kavitakosh.org/kk/हिरोशिमा की पीड़ा/अटल बिहारीट्टवाजपेयी
2. पुजारी,अनुराधा शर्मा.(2022).इयत एखन अरण्य आसिल. पृष्ठ. 55
3. वही, पृष्ठ. 95
4. वही, पृष्ठ. 101
5. पुजारी,अनुराधा शर्मा.(2022).इयत एखन अरण्य आसिल. पृष्ठ पृष्ठ. 25
6. वही, पृष्ठ. 103
7. पुजारी,अनुराधा शर्मा.(2022).इयत एखन अरण्य आसिल. पृष्ठ.103
8. वही, पृष्ठ. 57
9. वही, पृष्ठ. 103
10. पुजारी,अनुराधा शर्मा.(2022).इयत एखन अरण्य आसिल. पृष्ठ. 103, 104
11. वही, पृष्ठ. 104
12. वहीं, पृष्ठ 104
13. पुजारी,अनुराधा शर्मा.(2022).इयत एखन अरण्य आसिल. पृष्ठ. 117
14. वही, पृष्ठ. 174

पीएच. डी. शोधार्थी, हिन्दी विभाग
नागालैंड विश्वविद्यालय
ईमेलः sagarchetry349@gmail.com
फोनः 8638225323

'कड़ियाँ' उपन्यास में नारी चेतना

डॉ.माजिदा.एम.

सारांश : नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग है। सामाजिक प्रगति के लिए उसका योगदान अनिवार्य है। वैदिक कालीन स्त्री को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था। उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। मध्ययुग तक आते आते स्त्रियों को सामाजिक बंधनों में जकट दिया गया। आधुनिक काल में महिलाओं की स्थिति में सुधार आ गया।लेकिन इसका लाभ उच्चवर्ग तक ही सीमित रह गया। निम्न वर्ग की स्त्रियों को न तो शिक्षा का अवसर प्राप्त था और न ही ये सामाजिक अधिकारों एवं दायित्यों के प्रति सजग थीं। अपने अधिकारों से वंचित नारी के प्रतिनिधि के रूप में भीष्म साहनी ने अपने कड़ियाँ उपन्यास की नायिका प्रमीला को प्रस्तुत किया है ।

बीज शब्द - परिवार , पति का अवैध संबंध, अंतर्मुखी बच्चा, तलाक, स्वावलंबन

भूमिका : परिवार में पुरुष का पूरक तथा सहयोगी होने के साथ-साथ वह सृष्टि का मूलाधार भी है। शिशु के व्यक्तित्व निर्माण में भी उसका योगदान सर्वोपरि है। वह बच्चे के जीवन का दिशा निर्धारण करती है और नई पीढ़ी को श्रेष्ठ मानवीय संस्कारों से संपन्न भी बनाती है। नारी प्रेम, ममता, औदार्य, वात्सल्य आदि की प्रतिमूर्ति है। उसमें मर्यादा, त्याग, कर्तव्यपरायणता, सहनशीलता आदि अनेक गुण विद्यमान है। अपने परिवार के लिए सब कुछ त्यागने की क्षमता भी उसमें है। पूर्ण समर्पण की भावना से वह सामाजिक संबंधों को निभाती है। उसकी अवमानना करके कोई भी समाज खुशी से नहीं रह सकता।

वैदिक कालीन स्त्री को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था। उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। वह वेदों का अध्ययन एवं अध्यापन कर सकती थी। स्त्री के बिना कोई भी धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान संपन्न नहीं हो सकता था। इस समय स्त्रियों को पिता की संपत्ति पर उत्तराधिकार प्राप्त था। संक्षेप में वैदिक कालीन स्त्री को समाज में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त था। मध्ययुग तक आते आते विदेशी आक्रमणकारियों के आने के बाद स्त्रियों को सामाजिक बंधनों में जकट दिया गया और उनकी स्थिति में गिरावट आई। लड़कियों की शिक्षा समाप्त हो गई और सती प्रथा चरम सीमा तक पहुँच गई। बाल विवाह प्रचलित होने लगा और विधवा विवाह को अमान्य माना जाने लगा। केवल निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ही नौकरी कर सकती थीं। स्त्रियों के सारे अधिकार छीन लिए गए और उसकी स्वतंत्रता नाम मात्र को रह गई। नारी को केवल मनोरंजन या विलासिता की सामग्री समझा गया। अशिक्षा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि चरम सीमा तक पहुँच गई और स्त्री की स्थिति प्रायः पुरुष की अधीनता की रह गई।

आधुनिक काल तक आते-आते स्त्री शिक्षा का प्रचार एवं आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि संस्थाओं के प्रयत्न से स्त्रियों की दशा में पर्याप्त परिवर्तन आ गया। समाजसुधारकों ने स्त्री शिक्षा को प्रमुख स्थान दिया और महिला कल्याण को अपने कार्यक्रमों का प्रमुख आधार बनाया। भारतीय संविधान लागू होने के बाद महिलाओं की स्थिति में और भी सुधार आ गया। इन अधिकारों का लाभ उच्चवर्ग तक ही सीमित रहा। निम्न वर्ग की स्त्रियों को न तो शिक्षा का अवसर प्राप्त था और न ही ये सामाजिक अधिकारों एवं दायित्यों के प्रति सजग थीं। इसलिए ही उन्हें समाज में अनेक प्रकार के शोषण एवं उत्पीड़न का सामना करना पड़ा। साथ ही परिवार में भी उन्हें सुखी वातावरण नहीं मिलता था और आर्थिक संकट के कारण अनेक प्रकार की यातनाएँ सहनी पड़ती थी। इस स्थिति का वास्तविक चित्रण करती हुई डॉ. रमणिका गुप्ता लिखती है "देश में प्रचलित धार्मिक कुरीतियों, विकृतियों, अंधविश्वासों के कारण नारी मुक्ति- आंदोलन केवल शहरों के उच्चवर्ग की स्त्रियों तक ही सीमित होकर रह गया। ग्रामीण क्षेत्र में वह लगभग शून्य ही रहा है।"[1]

भीष्म जी के पारिवारिक जीवन पर आधारित

उपन्यास है 'कड़ियाँ' जिसमें मध्यवर्गीय नारी के संघर्ष का चित्रण मिलता है। इस उपन्यास में पति-पत्नी के टूटते संबंध एवं उसके दुष्परिणामों को चित्रित किया गया है। प्रमिला पति एवं पुत्र को सब कुछ माननेवाली पुराने संस्कारों की साधारण गृहस्थ महिला थी। वह अपने परिवार के लिए दासी की तरह काम करती रहती थी। घर की चारदीवारी को अपना कार्यक्षेत्र मानकर वह हमेशा व्यस्त थी। सुबह से शाम तक घर गृहस्थी के नीचे पिसना उसकी नियति थी।नारी की भावनाओं एवं कामनाओं को नगण्य मानने वाले महेंद्र के मन में प्रमिला का कोई स्थान नहीं था। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तिहोने पर भी वह नारी को केवल भोग्या समझती थी। स्त्री उसके लिए शारीरिक संतुष्टि का साधन मात्र था। "सभी औरतों से भोग करते हैं औरत बनी ही भोग के लिए है।"[2]

पति का अवैध संबंधः प्रमिला के प्रति महेंद्र के मन में उदासीनता उत्पन्न हो गई तो अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए उसने अपने दफ्तर के केशियर सुषमा से अवैध संबंध स्थापित कर लिया। पति पत्नी के रिश्ते की नींव विश्वास और सम्मान होता है। उनके बीच सच्चा प्रेम तभी हो सकता है जब दोनों के बीच एकनिष्ठता के व्रत का पालन हो। रिश्ते को मजबूत बनाने के लिए एक दूसरे की भावनाओं का कद्र करना अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में महेंद्र और प्रमिला का जीवन एक दूसरे के लिए बोझ बनकर रह गया। प्रमिला की आर्थिक स्थिति कमज़ोर थी और वह पूर्ण रूप से महेंद्र के आश्रय में रहती थी। इसलिए महेंद्र का विरोध करने का साहस उसमें नहीं था। साथ ही महेंद्र से संघर्ष करके अपनी पत्नी के अधिकारों को स्थापित करने का सामर्थ्य भी उसमें नहीं था। किसी न किसी तरह साहस जुटाकर प्रमिला इस नाज़ायज़ रिश्ते के विरुद्ध आवाज़ उठाती है तो महेंद्र शारीरिक रूप से उसे पीड़ा पहुँचाने लगता है। आर्थिक रूप से महेंद्र पर निर्भर होने के कारण प्रमिला को शारीरिक एवं मानसिक यातनाएँ सहनी पड़ीं।

अंतर्मुखी बच्चा : पति-पत्नी के आपसी प्रेम के अभाव में परिवार में उलझन हो जाता है। बच्चों के मन में इससे गहरा प्रभाव पडता है। प्रमिला और महेंद्र का बेटा पप्पू सात साल का एक छोटा सा बालक था। अपने माँ-बाप के झगड़े का उसके नाजुक मन पर बुरा प्रभाव पड़ा। वह सदा सहम सहम कर रहने वाला और हर किसी से भय की भावना रखने वाला था। जब महेंद्र आपे से बाहर होकर प्रमिला को थप्पड़ मारता है तो वह ऊँचा ऊँचा रोने लगता है। उस समय महेंद्र ने डरा धमका कर उसे चुप भी कराया था। बाद में इस संबंध में महेंद्र का विचार दृष्टव्य है- "आज की हमारी झगड़े से उस बेचारे का सारा साहस कुचला गया है। अब वह बात बात पर डरता रहेगा, जिंदगी भर सहमा- सहमा रहेगा। जब मैं छोटा था तो मेरे माँ बाप भी एक दूसरे पर चिल्लाया करते थे। पप्पू की भी यही दशा होगी। जिंदगी भर के लिए पंगु बन जाएगा।"[3] माँ बाप के प्यार से वंचित होने के कारण पप्पू अंतर्मुखी बन गया था।

महेंद्र ने पप्पू को बोर्डिंग स्कूल में डाल दिया। माँ और बच्चे के रिश्ते के बीच में आने का अधिकार संसार में किसी को भी नहीं है। लेकिन महेंद्र ने प्रमिला से अपने बच्चे को अलग किया। इससे उस छोटे से बच्चे के नाजुक मन पर बहुत बडा धक्का लगा। यह भावना इतनी अधिक थी कि थोड़ी सी डाँट फटकार मिलने पर भी वह अपने निक्कर में पेशाब कर देता था। बोर्डिंग में तो वह किसी भी लड़के से नहीं खुलता था। हमेशा अपने ही धुन में खोया रहता था। दोपहर को खाना खाने के बाद जब सभी लड़के खेलते थे तब वह गेट से चिपक कर अपनी माँ की प्रतीक्षा करता रहता था। आया ने महेंद्र से कहा था- "इन्हें देखकर कलेजे में हूक उठती थी। सच कहूँ, यहाँ काम करते बीस बरस हो गए। ऐसा लड़का नहीं देखा। बस गेट से चिपके खड़े हैं और आँखें सड़क पर लगी है कि माँ आएगी।"[4] बच्चे के कोमल हृदय को जिस उदार और संवेदनशील व्यवहार की ज़रूरत है वह माँ ही दे सकती है। पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने में पति-पत्नी दोनों का योगदान अत्यंत आवश्यक है।

तलाक : प्रमिला किसी न किसी तरह अपने पारिवारिक जीवन को बनाए रखना चाहती थी तो महेंद्र अपनी विलासितापूर्ण जीवन को अधिक महत्व देता था। इसलिए उसने प्रमिला को अपने घर से निकाल दिया। एक ओर वह अपने बच्चे से अलग होने के दुख में था तो दूसरी ओर उसका जीवन पूर्ण रूप से आश्रय हीन बन गया। पर आर्थिक रूप से स्वावलंबी न होने के कारण वह कुछ भी नहीं कर सकती

थी। नारी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होकर ही अपने अस्तित्व को स्थापित कर सकती है। उसे शिक्षित होकर आत्मनिर्भर होना है और अपने आत्मसम्मान को जागृत करना है। शिक्षा ही महिलाओं को ताकत दे सकती है। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता के अभाव में उसे पति के सारे शोषण और अत्याचार सहना पड़ा। प्रमिला के पिता नारंगी साहब वकील थे। लेकिन वकालत न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति भी कमज़ोर थी। इसलिए वे भी प्रमिला की देखभाल नहीं कर सकता था। एक ओर अपने पारिवारिक जीवन के विघटन से वह परेशान थी तो दूसरी ओर आर्थिक अभाव से पीड़ित थी।

प्रमिला की सहेली सतवंत और महेंद्र की बहन इन दोनों को फिर से परस्पर मिलाना चाहते थे। इसके लिए दोनों को महेंद्र के मित्र नाटे के घर में बुलाया। प्रमिला अपने पारिवारिक जीवन को बनाए रखना चाहती थी तो महेंद्र प्रमिला को अपने जीवन से दूर हटाना चाहता था। फिर भी उस मुलाकात में महेंद्र ने वासना और भावना की सरिता में बहकर प्रमिला से शारीरिक संबंध जोड़ा। लेकिन वह उसे अपनाना नहीं चाहता था। सोती हुई प्रमिला को अकेला छोड़ कर वह वहाँ से चला गया। महेंद्र द्वारा अपमानित प्रमिला का मानसिक संतुलन खो गया और वह पागल बन गई। हर वक्त वह घर से बाहर घूमती फिरती थी। अंत में विवश होकर नारंगी साहब को उसे पागलों के अस्पताल में डालना पड़ा। महेंद्र प्रमिला से मिलने के लिए अस्पताल में गया तो वहाँ के डायरेक्टर से उसे मालूम हुआ कि प्रमिला गर्भवती है। वह इतना क्रूर और निर्दयी था कि इस हालत में भी उसे अपने जीवन में वापस लाना नहीं चाहता था।

स्वावलंबन : बच्चा पैदा होने के बाद प्रमिला की मानसिक स्थिती में परिवर्तन आ गया और वह अपने पिता के घर वापस गई। जीवन के कठोर परिस्थितियों का सामना करते करते सहज ही उसमें चेतना जाग गई। धीरे धीरे आर्थिक स्वावलंबन का महत्व उसे महसूस होने लगा। इस समय उसके जीवन में महेंद्र के लिए कोई स्थान नहीं रह गया था। उसकी सहायता के बिना ही वह अपने बेटे पप्पू से मिल चुका था। वह दवाइयों की दुकान खोलकर अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती थी। स्वावलंबन ने उसे नए व्यक्तित्व और आत्मविश्वास की आभा से दीप्त किया था।उसे मालूम हो गया था कि ज्यादा नेक दिल और रूढिग्रस्त होना स्त्रियों के लिए अभिशाप है। अब वह उस नारी की प्रतिनिधि बन गई है जो घर की घेरेबंदी को तोड़कर मुक्तहोने की इच्छा रखती हैं और कभी भी अस्थिर और बेचैन वातावरण में वापस आना नहीं चाहती थी। उसे महसूस हुआ कि उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है जिसे कुंठित व शोषित करने का अधिकार पुरुष को नहीं है।

निष्कर्ष : भीष्म साहनी ने प्रमिला का चित्रण कठिन से कठिन प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करके अपने अस्तित्व को बनाये रखनेवाली स्त्री के रूप में किया है। शिक्षा की सहायता से हर एक स्त्री अपने आप में आत्मविश्वास भर सकती है। यह आत्मविश्वास उसे अपने जीवन के लंबी सफर तय करने में सहायक बनेगा। साथ ही नौकरी से स्त्री को स्वावलंबी बनना चाहिए जो उसे अपने जीवन में आनेवाली मुसीबतों को पार करने का साहस प्रदान करेगा। इस तरह अगर वह अपनी शक्तिको पहचानेगा तो परिस्थितिजन्य प्रतिबंधों को पार करने का साहस उसमें आ जाएगा। इससे वह अपने अधिकारों के प्रति सजग होगी, अपने जीवन का निर्णय वह स्वयं लेगी और आत्मा समीक्षा भी कर लेगी। उसे अपनी शक्ति का एहसास हो जाएगा और किसी की मदद के बिना वह स्वयं निर्भीक होकर अपने जीवन का सफर पूरा कर सकेगी। इस प्रकार स्त्री को अपनी जिंदगी की लड़ाई के लिए तैयार किए बिना सिर्फ स्त्री सुरक्षा के कानून बनाने से कोई फायदा नहीं होगा। स्त्री को सुसज्जित करने के साथ ही साथ समाज के सभी सदस्यों के मन में नैतिक-अनैतिक, पाप- पुण्य, धर्म-अधर्म का भेद संस्कार रूप में डालना भी अत्यंत आवश्यक है। इस प्रकार स्त्री को सुसज्जित करने के साथ समाज के सभी सदस्य उससे उचित बर्ताव भी करेंगे तो भारत का भविष्य जरूर उज्ज्वल हो जाएगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. रमणिका गुप्ता स्त्री-विमर्श कलम और कुदाल के बहाने, पृ.21
2. भीष्म साहनी - कड़ियाँ पृ. 111
3. भीष्म साहनी - कड़ियाँ पृ. 123
4. भीष्म साहनी - कड़ियाँ पृ. 187

असोसियट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सरकारी महिला कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

किरण अग्रवाल की 'रुकावट के लिए खेद हैं' में चित्रित नारी समस्याएँ : एक अध्ययन

डॉ. राजेष कुमार.आर

हिंदी साहित्य में नारी समस्या एक महत्वपूर्ण और ज्वलंत विषय रहा है। नारी की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति पर ध्यान केंद्रित करते हुए साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में नारी के संघर्ष, पीड़ा और आकांक्षाओं को बखूबी चित्रित किया है। यह साहित्य नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है और समाज में उसकी स्थिति पर विचार विमर्श को प्रेरित करता है। नारी समस्या से जुड़े प्रमुख मुद्दों में स्त्री की स्वतंत्रता, शिक्षा, अधिकार, घरेलू हिंसा, सामाजिक और सांस्कृतिक बंधनों में जकड़ी स्त्री, और लैंगिक असमानता प्रमुख हैं। इन मुद्दों पर हिंदी साहित्य में कई महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखी गई हैं, जो न केवल नारी की कठिनाइयों को उजागर करती हैं बल्कि उसके संघर्ष और साहस को भी प्रमुखता से सामने लाती हैं।

किरण अग्रवाल हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण कवयित्री हैं, जिन्होंने अपनी रचनाओं में नारी की समस्याओं को विशिष्ट और गहरे तरीके से उभारा है। उनकी कविताओं में नारी समस्या को लेकर कुछ ऐसे पहलू हैं जो उन्हें अन्य रचनाकारों से भिन्न और विशिष्ट बनाते हैं। 'गोल गोल घूमती नाव' के पश्चात् उनका दूसरा काव्य संकलन 'रुकावट के लिए खेद है' में समाज की जटिलताओं और मानवीय संवेदनाओं को बारीकी से चित्रित करता है। इस संग्रह में विशेष रूप से महिलाओं की समस्याओं और उनके संघर्षों को प्रमुखता दी गई है। उनकी कविताएँ न केवल व्यक्तिगात अनुभवों का दर्पण हैं, बल्कि समाज के विविध पहलुओं को भी गहराई से प्रतिबिंबित करती हैं।

अग्रवाल की कविताएँ नारी मन की उदासी को छूते हुए उसे उन एकाकी मार्गों पर ले जाती हैं, जहाँ जीवन के सिलसिले प्रतीक्षारत हैं, और मन की गाँठों को खोलने के प्रयास में हैं।

कचनार की कोमल टहनियों सा /बार-बार कविता को दफनाना /खुद शामिल होना अपनी शवयात्रा में /और दूसरे दिन फिर तैयार हो जाना/एक दूसरी शत्रयाता के लिए....

कचनार की टहनियाँ नारी के कोमल और नाजुक स्वभाव की प्रतीक हैं, जो बाहरी कठोरता के बावजूद अपनी अंतर्निहित कोमलता और सुंदरता को संजोए रहती हैं। नारी अपनी भावनाओं और विचारों को बार-बार दफनाकर, स्वयं को पुनः जागरूक करने का प्रयास करती है, जो उसके जीवन की कठिनाइयों का सामना करने की अनवरत इच्छा को दर्शाता है।

पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की स्थिति को लेकर कवयित्री गहरी चिंता व्यक्त करती हैं। उन्होंने उन चुनौतियों का वर्णन किया है जिनका सामना महिलाओं को विभिन्न क्षेत्रों में करना पड़ता है, चाहे वह शिक्षा, रोज़गार या घरेलू जीवन हो। कवयित्री का नारी मन बार-बार अपने आस-पास देखता है और पाता है कि वह किसी सुंदर पिंजरे में कैद है, जिससे मुक्ति की खोज में है।

किरण अग्रवाल की कविताओं में समय के सवाल से टक्कर लेते नारी मन की विरला छवियाँ अंकुरित होती नजर आती हैं, जो सामान्य मान्यताओं और मूल्यों को दरकिनार करती हुई नारी-जीवन के स्थापित मानदण्डों को तोडती हैं और विचारधारा की भूमि पर नये प्रतिमान स्थापित करने की कोशिश करती नजर आती हैं।प्रस्तुत कविताएँ कवि को पारदर्शी दृष्टि को प्रतिबिंबित तो करती ही हैं, साथ ही उन संबंधों की भी चीर-फाड करती है, जो स्त्री पुरुष के बीच हैं। इनमें छाई उदासी कवि के मन को आंदोलित करती है और शब्दों की तीक्ष्णता के साथ कविता की धरती पर उतरती है, "जिसे मैं कविता समझ संजोती रही आज तक /वह कविता नहीं थी /वह महज खोल था / कविता का कितना तोड़ देने वाला है यह अहसास/मैं एक छलावे के पीछे भागती रही जीवन भर /और जीवन कब मेरा साथ छोड़ गया /मुझे पता ही नहीं चला /बस उसकी

परछाई देखी है अकेलेपन /के अंधेरे में विलीन होती हुई।

ये पंक्तियाँ कवयित्री के जीवन की विफलताओं और झूठे भ्रम के पीछे भागने की वास्तविकता को स्वीकार करती है। यह जीवन की उन धारणाओं और लक्ष्यों का प्रतीक है जो वास्तविकता में प्राप्त नहीं हो सका। कवयित्री यह महसूस करती हैं कि जीवन ने कब उनका साथ छोड़ दिया, इसका अहसास उन्हें नहीं हुआ, और अब वह केवल उसकी परछाई को अकेलेपन के अंधेरे में देख रही हैं। यह जीवन की नश्वरता और अकेलेपन की निराशा को दर्शाता है।

'रुकावट केलिए खेद है' काव्य संकलन की कविताओं से गुजरते हुए कवयित्री के नारी- मन को आसानी से पकड़ा जा सकता है। प्रस्तुत काव्य संकलन की रचनाओं में जहाँ एक ओर नारी मन की तड़प के विरल दृश्य बिखरे पड़े हैं, तो वहीं दूसरी ओर मानव मन की गहराई में उतरते हुए उनकी गाँरें खेलने का प्रयास करती नज़र आती हैः इतने दिनों बाद फिर से मेरी देह में /खिल उठे हैं कामिनी के फूल /मेरी देह महमह रही है /दिल चाहता है कोई मुझसे प्यार करे।

यह न केवल शारीरिक जागृति बल्कि मानसिक और भावनात्मक पुनर्जागरण का प्रतीक है।कामिनी के फूल खिलने का संदर्भ आंतरिक सुंदरता और नए सिरे से जीने की इच्छा को दर्शाता है।

कविता के ऐसे कठिन समय में किरण अग्रवाल की कविताएँ पाठकों के लिए उम्मीद की एक खिडकी खोलती है। जिसके अप्रतिम शब्द विन्यास और कविता कहने के ढंग कविता के रीतेपन को दूर करने का प्रयास करते हैं। किरण अग्रवाल की कविताएँ भाषा - शिल्प और लय - प्रवाह की दृष्टि से भी हिन्दी कविता के सुखद भविष्य की आश्वस्ति देती है। अभिव्यक्तिकी इस कला में उनकी भाषिक संरचना का योग कम नहीं है। भाषा के प्रति वे आरंभ से ही सजग रहे हैं। किरण अग्रवाल की कविताएँ इसलिए भी अद्‌भुत और विशेष है कि आधुनिकता के इस अंधी दौड में आदमी को टूटने नहीं देती और जीने के लिए ऊर्जिस्वित करने की संचेष्टा करती है।

किरण अग्रवाल की कविताएँ वर्तमान कविता के चालू मुहावरों से परे जाकर उस जीवन मूल्य को रोपने का प्रयास करती हैं जो सामूहिकता की ओर उन्मुख है और जो निरर्थकता से ताजगी प्रदान करता हैः मुझे उनके मुँह से ताजा खून की बू आयी /मैंने वापस लौटना चाहा / लेकिन बाहर जाने के सारे दरवाजे बंद थे /बस एक खिड़की पर गूंगी हवा धीरे-धीरे /दस्तक दे रही थी /कला इसी के कंधों पर जिंदगी को बैठा /डूबे आये थे वे युद्ध के महासमुद्र में।

सामयिक होते समय के बीच विचरण करते इन कविताओं की निरंतरता आलोचकीय अवकाश की माँग करती है। कभी इतिहास, कभी वर्तमान और कभी भविष्य की उम्मीदों से भरी इन कविताओं की पंक्तियों का ताना बाना बेशक दिखने में सहज सरल है, लेकिन उनका समग्र काव्यात्मक प्रवाह हमारे आसपास की हलचलों के नीचे बहुत घने तरह से प्रवाहित हुआ है।

कभी इतिहास, कभी वार्तमान और कभी भविष्य से टकराती 'रुकावट केलिए खेद है' संकलन की रचनाएँ शिल्प की सरलता के कारण समायिक हौत समय की हलचलों को ज्यादा करीब से व्यक्त कर पाने में सक्षम हैं। कोलाहल को संगीत करार देने की जिद्द करते इस दौर मैं ठेठ संगीतमय धुन की खोज के साथ आकार लेती धूप का सौंदर्य रचती ये कविताएँ चकाचौंध से दूर, फटेहाल जीवन जीते गायक का स्वर होना चाहती हैं।

संक्षेप में, 'रुकावट के लिए खेद है' समाज की जटिलताओं और समस्याओं पर एक गहरी और संवेदनशील दृष्टि प्रस्तुत करता है। उनकी कविताओं में जहाँ एक ओर समस्याओं का यथार्थ चित्रण है, वहीं दूसरी ओर एक आशा की किरण भी है, जो पाठकों को सोचने और बदलाव के लिए प्रेरित करती है। यह संग्रह समकालीन हिंदी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है और समाज के विविध पहलुओं पर एक महत्वपूर्ण संवाद की शुरुआत करता है।

असोसियट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

कैलाशनाथ आधुनिक समाज के लिए एक मिसाल- 'अभिमन्यू चक्रव्यूह में' नाटक के आधार पर एक समीक्षा

अरुण मोहन.एम.आर

मिथकीय तत्त्वों के आधार पर श्री. चिरंजीत द्वारा लिखा गया नाटक है 'अभिमन्यू चक्रव्यूह में'। इसका नायक है कैलाशनाथ। वह एक आदर्शवान और ईमानदार अफसर है। वह अपना दायित्व पूरी ईमानदारी से निभाता है। भ्रष्टाचार से ग्रस्त हुए आज के हमारे समाज में एक अधिकारी का ईमानदार रहना उतना आसान काम नहीं है। यह भ्रष्टाचार हम सभी क्षेत्रों पर देख सकते हैं । महाभारत के अभिमन्यू की तरह सभी ईमानदार अधिकारी एक तरह के चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। कैलाशनाथ के कार्यालय में एक सह इंजीनियर का पद खाली है। इसके लिए वहाँ पर एक इंटरव्यू की घोषणा की गयी है। कैलाशनाथ इंटरव्यू के अध्यक्ष बन जाता है। तब इस नौकरी हासिल करने के लिए कई लोग हर तरह के बहाने लेकर उसके पास आते हैं। पहले आती है 'अस्मिता' पत्रिका की संपादक श्रीमती कल्पना। वह अपने भाई के लिए यह पद चाहती है। वह जानती है कि कैलाशनाथ को कविता लिखने की शौक है । श्रीमती. कल्पना कैलाशनाथ की इस कमज़ोरी का फायदा उठाना चाहती है। फिर बारी आती है ठेकेदार विलायती बाबु की। वह अपने एक रिश्तेदार के लिए यह पद चाहता है। लेकिन वह एक अलग तरीका अपनाता है। 'जॉन मिल्टन' ने 'पैरडैस लॉस्ट' में कहा है कि 'Eve is vulnerable to temptations' अर्थात् नारी हमेशा आसानी से प्रलोभन का शिकार बन जाती हैं। इसी तत्व के आधार पर विलायती बाबू कैलाशनाथ की पत्नी लीला के लिए कीमती शॉल खरीद कर नौकर रामु को सौंप देता है। उसके बाद आते हैं कैलाशनाथ के समुदाय के प्रधान जी। वे यह पद अपने भाई के पुत्र को दिलाना चाहते हैं। इसके लिए वह कैलाशनाथ के साथ वह युवक और लीला की बहन सरोजा की शादी की बात भी करते हैं। इन सबके बाद खुद कैलाशनाथ की पत्नी लीला अपनी एक परिचित युवक के लिए इस पद का प्रस्ताव कैलाशनाथ के आगे पेश करती है।

एक साधारण व्यक्ति के लिए इन सब तनावों को झेलना उतना आसान नहीं होता है। लेकिन कैलाशनाथ इन सब प्रलोभनों को नकारते हैं। समुदाय के प्रधान जी विलायती बाबु के साथ दुश्मनी मोल लेते हैं। महाभारत का अभिमन्यु युद्ध क्षेत्र में अकेला था। यहाँ पर कैलाशनाथ के साथ देनेवाले एक व्यक्तिहै उनकी अपनी साली सरोजा। इन सब लोगों की सिफारिशों को अनदेखा कर कैलाशनाथ अपनी नैतिकता के अनुसार सह इंजीनियर का पद एक योग्य युवक रामस्वामी अय्यर को देते हैं। एक मामूली आदमी के लिए इन सब लोगों को ललकारते हुए सत्य की राह में चलना उतना आसान नहीं है। यदि वे चाहते हैं तो ईमानदार अफसर के लिए कई तरह की मुजीबतें खड़ी कर सकते हैं।

अक्सर देखा जाता है कि राजनीति में शासन करने वाले दल अपने विपक्षी दल के साथ देनेवाले सभी अधिकारियों, कर्मचारियों, पुलीसवालों को स्थानांतरण देते हैं। उनके पेंशन रोकते हैं, और उनकी जिन्दगी बिगाड देते हैं । ऐसा कई बार हुआ है। ईमानदार लोगों को शिकार करने में भ्रष्टाचारी लोग साथ देते हैं। एक बार भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में पडा गया तो वहाँ से बाहर निकलना नामुमकिन है। भ्रष्टाचार के समर्थक अधिकारी इस व्यवस्था को कायम रखना चाहते हैं। क्योंकि उन लोगों के लिए भ्रष्टाचार के साथ देते वक्त हर तरह की सुविधाएँ मिलती हैं । समाज में भ्रष्ट राजनीतिज्ञ, बेईमान उद्योगपति, परिवार के सुविधा भोगी सदस्य, भ्रष्टाचार में डूबे हुए अनेक लोगों को हम देख सकते हैं। भ्रष्टाचार के समर्थक लोग ईमानदार अधिकारियों को प्रलोभन देकर, कभी घूस देकर उस व्यवस्था से बाँधकर रखते हैं। ईमानदार की इस त्रासदी को कैलाशनाथ के चरित्र द्वारा सशक्तरूप से चित्रित किया है । सभी लोगों

के लिए अपने सारे तनावों, अपनी सारी बोझों और उत्कण्ठाएं सुलझाने वाली जगह होता है अपना घर । जहाँ उनको अपनी धर्म पत्नी के साथ दिल खोलते वक्त सारे दर्द मिट जाते हैं । अपनी पत्नी से उन्हें एक तरह की मानसिक हिम्मत और उत्साह मिलते हैं । अगर सच्चाई के रास्ते में पत्नी पति के साथ हैं तो उनको ईश्वर की कृपा का अनुभव प्रतीत होता है । लेकिन कैलाशनाथ के मामले में खुद उसकी पत्नी लीला प्रलोभन के शिकंजे में है । वे भी अपने पति को भ्रष्टाचारी बनने को प्रेरित करती है। क्योंकि उनके लिए भी एक वैयक्तिक लक्ष्य है। अपना निजी स्वार्थ है। एक आदमी की हिम्मत है उनकी धर्म पत्नी। यदि वह उनका साथ नहीं देती है तो वह बिलकुल टूट जाता है। अंत में कैलाशनाथ भी कुछ देर के लिए दिमाग फटकर बैठ जाता है। लेकिन वह अपना सत्य और आदर्श छोडने को तैयार नहीं है । पुराण के अभिमन्यु चक्रव्यूह में पडकर अपने प्राण त्याग देता है। लेकिन यहाँ कैलाशनाथ अपनी ईमानदारी के बल पर इस चक्रव्यूह से बच निकलता है। प्रस्तुत नाटक का नायक कैलाशनाथ सत्य, धर्म, समवितरण की भावना, विश्व प्रगति, विश्व कुटुंब की भावना, भेदरहित समाज की स्थापना, भेदभाव का समूल वर्जन, प्रेमतत्व, मानवीय आस्था आदि का प्रतिनिधि होता है। आज के समाज में लोगों को अपनी पत्नी, अपना परिवार अपने बंधु रिश्तेदार आदि ही व्यक्तियों का परम है। इसी काल में ही कैलाशनाथ भी जीते हैं । लेकिन उसके दिल में स्वार्थ, लोभ, रिश्वत का मोह आदि नहीं होता है। अगर उसे नाम कमाने की इच्छा होती तो वह कल्पना जी के भाई को काम देता। लेकिन वह ऐसा नहीं करता है। अगर उसे पैसे के प्रति लालच होती तो वह ठेकेदार विलायती बाबु से दुशमनी नहीं मोलता। उनके मन में जाति या धर्म के प्रति कोई लगाव नहीं है । इसलिए ही अपने समुदाय के प्रधानजी द्वारा धमकाने के बाद भी वह अपने फैसले पर अटल रहा था । अपने परिवार के अंतःछिद्र भी उनके लिए बडी बात नहीं है । इसलिए ही वह अपनी पत्नी लीला की सिफारिश को नकारते हैं । इन्हीं तत्वों के आधार पर हम कह सकते हैं कि कैलाशनाथ इस समाज के लिए एक अच्छा मिसाल है। महाभारत के कर्ण और युधिष्टिर और रामायण के श्रीराम की तरह वह किसी भी अवस्था में अपने आदर्श को भूलनेवाला नहीं है ।

इस नाटक से हमें पता चलता है कि भारत के प्रशासन की कार्य प्रणाली बहुत दोषपूर्ण है । हर जगह भ्रष्टाचार होने की संभावना होती है । सरकारी कार्यालयों को लालफीताशाही का शिकार हर वक्त आम आदमी को होना पड़ता है। इससे झुटकारा पाने के लिए आम आदमियों को बाबुओं और साहबें को रिश्वत देना पडता है। अगर एक सच्चा अफसर ईमानदारी से अपना काम करें तो वह अपने देश के नागरिकों के लिए करनेवाला एक महत्वपूर्ण कार्य होगा । हर काम ईमानदारी से करना आजादी के बाद इतने साल हो चुकें फिर भी आज भी हमारा देश सौ प्रतिशत प्रगति हासिल नहीं करने का वजह अपने देश की बढती हुई भ्रष्टाचार और अनीति है । अगर नाटक का कैलाशनाथ जैसा एक अफसर हर सरकारी कार्यालय का सर्वोच्च पद पर हों तो हमारा देश कब ही प्रगति की ओर अग्रसर हो चुका होंगी ।

ज़्यादातर लोग समझते हैं कि सरकारी नौकरी एक अनमोल तोहफा है । लेकिन सब के लिए यह जुही का रास्ता नहीं है । ईमानदार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध रहते अफसरों के लिए यह रास्ता काँटों से भरा होता है। एक दफ्तर में सभी भ्रष्टाचारी अफसरों के बीच एक ईमानदार अफसर रह गया तो वह उन लोगों की आँख की किरकिरी बन जाता है। सब मिलकर उनको धकेलना चाहता है। क्योंकि उन लोगों के लिए वह ठीक व्यक्ति नहीं है । शायद वे लोग रिश्वत लेना पसंद करते होंगे । लेकिन कैलाशनाथ जैसा ईमानदार कर्मचारी इसके विरुद्ध खड़े होते हैं तो वे कैसे अपनी मनमानी से रिश्वत ले सकते हैं? इस व्यवस्था में और भी एक दोष है। अगर एक ईमानदार कर्मचारी रिश्वत नहीं लिया तो भी उसके उच्च अधिकारी रिश्वत लेकर उनको वह काम करने को मजबूर करेंगे। सारे दफ्तरों में यह होता रहता है। सब सरकारी कर्मचारी उद्योग पाते वक्त भ्रष्टाचार और अनीति के समर्थन न करने का

और रिश्वत न स्वीकार करने की प्रतिज्ञा लेते हैं। लेकिन कुछ लोग उद्योग पाते ही इस प्रतिज्ञा का लंखन करते हैं। कुछ लोग पहले ईमानदार रहते हैं लेकिन धीरे-धीरे व्यवस्था के हाथ की कठपुतली बनकर इस भ्रष्टाचार के चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। यहाँ पर कैलशनाथ सबसे विभिन्न रहता है।

कैलाशनाथ को अपने चरित्र पर बहुत गर्व है। वह अपनी सच्चाई और ईमानदारी पर सदा भावुक भी होते हैं। उसकी यह प्रसंग से हमें वह मालूम पडता है। "अरे, हम सब अपमानित है, नौकर भी और मालिक-मालिकिन भी। ओह! मैं संसार के सामने दुध का धुला बनता था, ईमान और सच्चाई का देवता बनता था। धर्म राज बनता था, लेकिन...."[1] इस प्रसंग में एक बात ज्ञात होता है दक कैलाशनाथ लोगों की बातों से डरते हैं। वह समाज के सामने मानी बने रहना चाहते हैं। मनोवैज्ञानिक तौर पर व्याख्यान करते वक्तहमें ऐसा पता चलता है कि कैलाशनाथ दूसरों से अपने आप को आदर्शवान और ईमानदार कहने से एक गुप्त आनन्द ले रहा है। वह ईमानदारी और सच्चाई के मामले में सदा सबसे उँचा रहना चाहता है। यही नहीं कैलाशनाथ को अपने देश के प्रति भी चिंता है। कैलाशनाथ अपनी साली सरोजा से कहता है- "तुम दोनों के विवाह से यह भी साबित हो जाएगा है कि नये भारत की युवा पीढी, जाति, प्रान्त और उत्तर-दक्षिण की दीवारें गिराकर उँच-नीच के भेदभाव को मिटाकर देश की एकात्मकता के सूत्र में बाँध रही है, राष्ट्रीय एकता की भावना को साकार कर रही है।"[2]

संदर्भ ग्रन्थ

1. अभिमन्यु चक्रव्यूह में- चिरंजीत, लोकभारती प्रकाशन 1994, पृष्ट सं: 95
2. अभिमन्यु चक्रव्यूह में- चिरंजीत, लोकभारती प्रकाशन 1994, पृष्ट सं: 98

शोध छात्र, सरकारी महिला कॉलेज
तिरुवनंतपुरम, केरल

प्रश्नोत्तरी का उत्तर

1. श्रीहरिराय जी
2. अज्ञेय
3. चिंतामणि घोष
4. बंग महिला
5. युगांत
6. ब्रह्म
7. माणिक्यचंद्र सूरि
8. एल.पी.टैसीटरी
9. विद्यापति
10. राजेंद्र यादव
11. कमलेश्वर
12. डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल
13. रेखाचित्र
14. भोलानाथ तिवारी
15. वंदना टेटे
16. कुँवर नारायण
17. ओमप्रकाश वाल्मीकी
18. डॉ.एन.चंद्रशेखरन नायर
19. वाल्टर बेसेंट
20. पद्मावत

सुशीला टाकभौरे की कहानियों में दलित नारी की अभिव्यक्ति

अरुणिमा.ए.एम

दलित साहित्य के उत्थान के लिए समकालीन समय में संगोष्ठी, शोध प्रवृत्तियाँ आदि हो रही हैं। दलित साहित्यकारों ने आलोचना, उपन्यास, नाटक, कविता, कहानी आदि विधाओं के माध्यम से दलित साहित्य में योगदान दिया है। उसमें से सुशीला टाकभौरे जी का महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दी दलित कथा साहित्य में सुशीला टाकभौरे जी ने नारी चेतना विषय पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। मैंने इस लेख में उनकी निम्नलिखित कहानियों का उल्लेख किया है। अनुभूति के घेरे, टूटता वहम, संघर्ष आदि उनके तीन कहानी संग्रह हैं। इनमें 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में संकलित 'सिलिया' कहानी का अध्ययन किया गया है।

सुशीला टाकभौरे जी हिन्दी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में से एक है। निजी जीवन में सुशीला जी वाल्मीकि जाति की है। जातिवादी, वर्णवादी, विषमतावादी समाज रचना के अनुसार उन्हें अछूत माना जाता था। दलित जातियों के लोग सवर्ण समाज की बस्तियों से दूर, गाँव के बाहर रहते थे। सुशीला जी का घर भी गाँव से दूर था। उन्होंने अनेक चुनौतियों के बावजूद दलित साहित्य पर अपना लेखन जारी रखा। सुशीला टाकभौरे जी साहित्य की विविध विधाओं जैसी कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, निबंध, आत्मकथा, वैचारिक लेखों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त किया है।

दलित महिलाओं को दलितों में दलित माना जाता है। इसके लिए हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरुष प्रधान समाज जिम्मेदार है। एक दलित महिला के जीवन का इतना कड़वा ठोस और वास्तविक अनुभव स्वयं दलित महिला को ही होगा। इतना तो किसी गैर दलित महिला को नहीं मिल सकता। दलित महिलाओं की समस्याएँ आम महिलाओं से बिलकुल अलग होती हैं। समाज में दलित महिलाओं का सर्वाधिक शोषण होता है। दलित महिलाओं को इस जातिगत समाज में आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक व धार्मिक अधिकार अब भी ठीक से हासिल नहीं हुए है। सुशाला टाकभौरे जी के सन् 1997 में प्रकाशित अनुभूति के घेरे में कहानी संग्रह में ग्यारह कहानियाँ है। इसमें अधिकतर कहानियाँ दलित नारी से संबंधित हैं।

'सिलिया' एक दलित कन्या की कहानी है। सुशीला टाकभौरे जी ने इसमें समाज में व्याप्त जातिभेद, असमानता की भावना आदि समस्याओं को उठाया है। कहानी के केंन्द्र पात्र सिलिया पढ़ाई करके आत्मविश्वास के साथ अपने समाज को सुधारना चाहती है। एक जाने-माने युवा नेता सेठी जी अछूत कन्या से विवाह करके आदर्श निर्माण करना चाहते है। नई दुनिया अखबार में 'शूद्र वर्ण की वधु चाहिए' विज्ञापन भी छपता है। सिलिया के गाँव के सभी लोग उसकी माँ को सलाह देते है। लेकिन सिलिया की माँ कहती है "नहीं भैया, यह सब बड़े लोगों के चोचले हैं। आज समाज को दिखाने के लिए हमारी बेटी से शादी कर लेंगे और कल छोड़ दिया तो..... हम गरीब लोग, उनका क्या कर लेंगे। अपनी इज्जत अपने समाज में रहकर भी हो सकती है। उनकी दिखावें की चार दिन की इज्जत हमें नहीं चाहिए। हमारी बेटी उनके परिवार और समाज में वैसा मान-सम्मान नहीं पा सकेंगी, न ही हमारे घर की रह जाएगी। न इधर की उधर की..... हमसे दूर कर दी जाएगी। हम उसको खूब पढ़ाएँगे - लिखाएँगे, उसकी किस्मत में होगा तो इससे ज्यादा मान-सम्मान वह खुद पा लेगी.... अपनी किस्मत वह खुद बना लेगी"[1]

सिलिया पढाई बहुत अच्छे से करती थी। सभी गुरुजनों से उसे मान-सम्मान मिलता है। परंतु बचपन में हुए दो घटनाओं को हमेशा वह याद करती है। जब उसकी मामी की बेटी मालती ने कुएँ के पानी पिया था तो मामी ने उसे बहुत मारा था। और दूसरा जब पाँचवीं कक्षा में थी। तो उसने टूर्नामेंन्ट में भाग लिया था। टूर्नामेंन्ट जल्दी खत्म होने के कारण वह अपनी सहेली के घर जाती है। उसकी मौसी ने सिलिया की जाती का नाम सुनने के उपरांत उसे पानी तक नहीं देती है। इन सब घटनाओं में सिलिया बहुत विचार करती है। उसे छुआछूत, जातिभेद, सेठी जी महाशय का

ढोंग आदि अच्छा नहीं लगता है। सिलिया पढ़ लिखकर स्वयं को ऊँचा साबित करती है, और वह अपने समाज को उन्नति की ओर ले जाने के लिए प्रयास करती है। सिलिया ने समाज से जातिभेद मिटाने का प्रयत्न किया है। इस कहानी में जातिभेद, छुआछूत और असमानता की भावना का चित्रण कर शिक्षा का महत्व बताया गया है।

'त्रिशूल' कहानी में दलित नारी जीवन के अंधकार का चित्रण किया गया है। इस कहानी में एक दलित महिला के जीवन का यथार्थवादी चित्रण है। यह एक मनोवैज्ञानिक एवं स्वप्निल शैली में लिखी गई कहानी है। इस कहानी में रेनू को सपना आता है कि वह पार्वती है और उसके प्रिय शिव उसके पास आना चाहते हैं। लेकिन पार्वती उन्हें पास नहीं आने देतीं। क्योंकि उसके पास पार्वती की अपनी पुत्री मोहिनी है। शिवा एक ट्रक में बैठे नजर आ रहे हैं। वह उधर से कहता है- इधर आओ, शहद भी है और गुलाब जामुन भी। लेकिन पार्वती अपनी बेटी के साथ एक मिट्टी के घर में आती हैं। उस घर में कोई दरवाज़ा और खिड़कियाँ नहीं हैं. उस घर के किनारे शिव का धुंधला चेहरा नजर आ रहा है। ये वही शख्स है जो ट्रक में बैठता है।पार्वती उन दोनों के बीच जलती हुई लकड़ियाँ रखकर उनके बीच बाधा पैदा करती हैं। वह चिल्लाती भी है। लेकिन उनकी आवाज गले से नहीं निकलती। रेनू जाग गई। घर, परिवार, बेटा-बेटी, पति के बीच उलझी रेनू अपने सपनों के धागों को सुलझा नहीं पा रही है। यहाँ शिव अपनी पुत्री मोहिनी से कह रहे हैं- 'देखो यहां शहद भी है और गुलाब जामुन भी है', यह प्रेम की भावना का प्रतीक है। ट्रक की ड्राइविंग सीट से शिव का स्वरूप प्रेमी का प्रतीक है।

पार्वती का मिट्टी के घर में जाना रेनू का प्रतिबिम्ब है। रेनू के रूप में पार्वती अपने बच्चों से प्यार करती हैं। अपने बच्चों के प्रति प्रेम की रक्षा के लिए वह अपने प्रिय के प्रेम को अस्वीकार कर देती है। यह रेनू का प्रिय पति नहीं, बल्कि उसका प्रेमी है, जो शादी से पहले उससे प्यार करता था। लेकिन शादी नहीं हो सकी। रेनू के अतृप्त प्रेम की यह अनुभूति स्वप्न के रूप में दृष्टिगोचर होती है। शिव का चेहरा धुंधला है क्योंकि रेनू ने अपने प्रेमी को बीस साल पहले देखा था। प्रतीक के रूप में त्रिशूल भी रखा गया है। रेनू बहुत परेशान है। उसे वह युवक याद आता है जो बीस साल पहले उससे प्यार करता था और उससे शादी करना चाहता था। इस प्रेमी के प्यार की चाहत उसके अचेतन मन में थी, जो स्वप्न के रूप में सामने आ गई है। स्त्री के जीवन में जहाँ सिर्फ धुंध ही धुंध नजर आती है, वहाँ कोई रास्ता या दिशा ढूँढना बहुत मुश्किल लगता है। क्योंकि पितृसत्ता और सामाजिक बेडियाँ इतनी गहरी हैं कि इससे निकलने का रास्ता खोजना मुश्किल है। कहानी की महिला पात्र अपने जीवन के अंधकार को दर्शाती हैं।

'टूटता वहम' कहानी में शिक्षित उच्च जाति और दलित जाति के बीच की मानसिक दूरी को प्रस्तुत किया गया है। आज देश इतना प्रगतिशील हो गया है, फिर भी जातिवाद और छुआछूत की भावना व्याप्त है। इस कहानी में जब लेखिका नागपुर में शिक्षक के पद पर नियुक्त होता है तो संस्था के संचालक बहुत खुश होते हैं। जब भी स्कूल में कोई कार्यक्रम होता है तो बड़े-बड़े मेहमान और वक्ता आते रहते हैं। प्रशासक लेखिका को बाहर से आने वाले प्रत्येक व्यक्तिसे परिचय कराते हुए उनकी जाति के बारे में बताते हैं। लेखक बार-बार जाति का उल्लेख करने के पीछे के उद्देश्य को पहचानता है। एक बार लेखिका ने सभी एसोसिएट प्रोफेसरों को अपने घर पर खाना खाने के लिए आमंत्रित किया। इसलिए केवल चार प्रोफेसर ही आते हैं। उनमें से दो लोग खाना खाने बैठे। ये दोनों भी अनुसूचित जाति से हैं। इसी तरह उन्होंने एक और घटना बताई है कि वह जिस कॉलोनी में रहती हैं, वहाँ उन्हें एक प्लॉट खरीदना था, लेकिन उसके पास इतने पैसे नहीं हैं तो वह अपने पति के सहकर्मी शिक्षक शर्मा जी से प्लॉट का आधा हिस्सा खरीदने की सोचती है। लेकिन शर्मा जी इस बात को टाल देते हैं। इसलिए उस प्लॉट को कोई और खरीद लेता है। लेखिका कहती है - "जब भी हम उस प्लौट के पास से गुज़रते है, उस पर बने मकान को देखकर लगता है, हम भी ऐसा ही मकान बना लेते, यदि हमें धोखे में ना रखा गया होता।"[2]

दलितों के लिए जरूरी है कि वे हिंदुओं की मंशा को पहचानें और अपनी गरिमा और अस्तित्व को पहचानें। इस प्रकार लेखिका ने अपने अनुभव बताने का प्रयास किया है। इसमें दलितों की आवास संबंधी समस्याएँ, भेदभाव की समस्या, भोजन की कमी आदि का चित्रण

किया गया है। यहां समानता के नाम पर झूठा भ्रम दर्शाया गया है। जो दिमाग को और अधिक कष्ट पहुँचाता है और सोचने पर मजबूर कर देता है।

'संभव- असंभव' कहानी में लेखक ने एक शूद्र लड़की और एक ब्राह्मण लड़के की विचारधारा का वर्णन किया है। इस कहानी के माध्यम से समाज में शूद्रों की स्थिति का वर्णन किया गया है। आदर्शों के नाम पर समाज में दलित महिलाओं पर कई तरह के प्रतिबंध लगाए जाते हैं। न चाहते हुए भी सारी जिंदगी इसी जागरूकता को ढोते रहते हैं। समाज ने सारी बंदिशें सिर्फ महिलाओं के लिए बनाई हैं और वह जीवन भर इन्हें बखूबी निभाती रहती है।

"संभव असंभव' कहानी में समाज में शूद्रों की स्थिति से अवगत कराया गया है। समय बदल रहा है फिर भी विषमतावादी भावनाओं की जड़े अभी बाकी है।"[3]

"आदर्शों की पोटली समाज की जगत पर रखकर शोषित पीडित एक दलित महिला कुएँ में डूबकर मरना चाहती है।"[4] इधर नारी जागृति एवं सामाजिक परिवर्तन के कारण अब वह हताश एवं निराश नहीं है। वह जानती है कि आज के दौर में औरतें मरती नहीं, सामना करती है। इस कहानी में दलित स्त्री इन बंधनों से कुचलकर मरना चाहती है। इसके विपरीत वर्तमान युग में महिलाएँ इन बंधनों को तोड़ने की कोशिश करने लगी हैं। इस कहानी में दलित महिला सभी बंधनों को तोड़कर आगे चलकर जीवन जीना चाहती है। कहानी के अंत में हमें यह संदेश मिलता है कि आज दलित महिलाएँ समाज से लड़कर जीवित रहना चाहती हैं और आदर्शों की गठरी को फेंक देना चाहती हैं।

उनकी कहानियों के अध्ययन से पता चलता है कि समाज में दलितों की क्या स्थिति है। ऊँची जाति के लोग दलितों को अपना सेवक मानते थे। उन्होंने दलितों के साथ मनमाना व्यवहार किया है। लेकिन अब दलित लोग उन्हें अपनी मर्जी से चलने नहीं देना चाहते। उनकी कहानियों में दलित जाति अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती नजर आती है। लेखिका ने अपनी लेखनी से दलित समाज को एक नई दिशा दी है। समसामयिक परिप्रेक्ष्य में वर्तमान को बेहतर बनाना और आने वाली पीढ़ियों के वर्तमान और भविष्य के बारे में सोचना ही इन कहानियों का उद्देश्य है। सुशीला जी ने केवल मनोरंजन के उद्देश्य से कहानियाँ नहीं लिखी हैं। बल्कि दलितों की समस्याओं और महिलाओं की समस्याओं का संकेत किया गया है। वह अपनी कहानियों में कई समस्याओं को चित्रित करने में सफल रही हैं। इसीलिए सुशीला जी की कहानियाँ आधुनिक युग में दलितों और महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों का मुख्य उद्देश्य दलितों की पिछड़ी स्थिति और स्त्री-पुरुष समानता का सजीव चित्रण करके पाठकों का ध्यान आकर्षित करना रहा है।

महिला लेखन एक ऐसे समाज की जरूरत है जो महिला लेखिकाओं को ध्यान में रखकर समाज में उनके लिए परिभाषित मूल्यों और मानदंडों को परखता है और गलत मानदंडों को अस्वीकार कर मूल्यों के निर्माण की ओर उन्मुख होता है। कभी-कभी लेखिकाओं को सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, कभी-कभी वे व्यंग्य का निशाना बनते हैं, और कभी-कभी उनके साहित्य का सही अर्थों में मूल्यांकन नहीं किया जाता है। फिर भी महिला चेतना से अभिभूत महिला लेखिकाएं उनके अनुभवों और भावनाओं को चित्रित करना अपना कर्तव्य समझती हैं और आगे कदम बढ़ाती हैं। प्राचीन काल से लोग जिस विकृत सोच को अपनाते आ रहे हैं, उसमें युवा पीढ़ी बदलाव लाने का प्रयास कर रही है। ऐसी कई समस्याएँ आज महिलाओं की समस्याओं के समान हैं। महिलाएँ न केवल अपने लिए बल्कि समाज के अन्य पिछड़े लोगों के लिए भी रलड़ रही हैं। मेरे विचार से सुशीला जी अपनी कहानियों को अपने उद्देश्य तक पहुँचाने में सफल रही हैं।

संदर्भ ग्रंन्थ सूची

1 डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ. 61
2 डॉ. सुशीला टाकभौरे, टूटता वहम, पृ. 79
3 संघर्ष(कहानी- संभव असंभव), पृ. 115
4 संघर्ष(कहानी- संभव असंभव), पृ. 129

शोध निर्देशिका-डॉ. शोभना कोक्काडन

शोध छात्रा , हिन्दी विभाग
अविनाषिलिंगम इन्स्टिट्यूट फोर होम सयन्स
एन्ड हयर एजुकेशन फोर वुमेन
कोयम्बत्तूर-641043

अन्या से अनन्या की अनन्यता

डॉ. मेर्ली के. पुन्नूस

समाज के हाशिये पर रहने को विवश स्त्री अपनी मानवीय पहचान से वंचित है ।प्रकृति प्रदत्त कुछ गुणों की वजह से स्त्री पुरुष से पिछड़ती गई ।इसी का लाभ उठाकर पुरुष ने खुद को समाज में प्रतिष्ठित किया एवं अपनी श्रेष्ठता का ढिंढोरा पीटा। अपने मनमाने ढंग से मूल्यों को गढ़ने का षड्यंत्र रचता रहा ।इन मूल्यों के अनुसार जीवन व्यतीत करना स्त्री का मुख्य ध्येय बन गया। उसने स्त्री को सार्वजनिक क्षेत्रों से खदेडकर घर की चारदीवारी में कैद कर दिया और उसे गुलामी के साँकलों में बन्धनस्त कर उसके ज़ेहन में यह बात ठूँस-ठूँसकर भर दी कि घर ही उसका एकमात्र कार्यक्षेत्र है और पति सर्वेसर्वा। स्त्री की मेधा, काबलियत को समाज ने अनदेखा कर दिया ।पश्चिमी दार्शनिक प्लेटो ने दार्शनिक विमर्श और बौद्धिक चिन्तन से स्त्री को कोसों दूर रखने की बात कही इस सिलसिले में सीमोन द बुआर लिखती है - "यदि इतिहास में बहुत कम स्त्रियाँ जीनियस हुई हैं तो इसका कारण उनका स्त्री होना नहीं बल्कि यह समाज है जो स्त्री की सारी अभिव्यक्ति को नियंत्रित करता रहता है, उसको प्रत्येक सुविधा से वंचित रखता है। बुद्धिमान- से- बुद्धिमान स्त्री की भी सार्वजनिक हितों के लिए आहुति दे दी जाती है। यदि उन्हें विकास का पूरा अवसर मिले तो ऐसा कोई भी काम नहीं जो वे न कर सकें ।दमनकर्ता हमेशा दमित की जड़ों को काटता रहता है ताकि वह बौना ही रह जाए।"[1] इस सन्दर्भ में वराहमिहिर और उनकी पत्नी रवना का प्रसंग अविस्मरणीय है जहाँ पति से अधिक बुद्धिमति रवना को अपनी ज़िन्दगी से ही हाथ धोना पड़ा।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित स्त्री मुक्ति आन्दोलन एवं शिक्षा की बदौलत समाज के हर क्षेत्र में स्त्री ने अपनी उपस्थिति दर्ज की। साहित्यिक फलक पर आरंभिक दौर में बंग महिला, अज्ञात हिन्दू औरत जैसे इक्के - दुक्के नाम ही उभरते नज़र आए। संविधान प्रदत्त स्त्री -पुरुष समानता, स्त्री के प्रति समाज के बदले नज़रिए ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लेखिकाओं की लंबी कतार को संभव बनाया। उन्होंने अपने लेखन के ज़रिए बरसों से चले आ रहे शोषण के कुचक्र का पर्दाफाश कर अपने निजी अनुभवों को सार्वजनिक बनाया।

'Personal is Political' में व्यापक आस्था के साथ आज आत्मकथायें 'लिखी जा रही हैं इस विश्वास के साथ कि ये जो आपबीती लिखी जा रही है, कहीं न कहीं जगबीती से जुड़ती, अपने साथ यह अपने समय की कहानी है, अपने परिवेश, अपनी जगह, अपने जातीय उपचेतन की कहानी है। कुसुम अंसल ने 'जो कहा नहीं गया', कृष्णा अग्निहोत्री ने 'लगता नहीं है दिल मेरा', पद्मा सचदेव ने 'बूँद बावड़ी', रमणिका गुप्ता ने 'हादसे', मन्नू भण्डारी ने 'एक कहानी यह भी' और प्रभा खेतान ने 'अन्या से अनन्या' के ज़रिए अपने जीवन के कसैले यथार्थ को उघाड़ने के साथ - साथ हर स्त्री के अंधेरे कोने को टटोलने का भी प्रयास किया है।

'अन्या से अनन्या' एक ऐसी स्त्री की

संघर्ष गाथा है जो परिवार में उपेक्षित, महज तीन सौ रुपयों से ज़िन्दगी की शुरुआत करती हुई करोड़ों के व्यावसायिक जगत में एक प्रतिष्ठित महिला के रूप में उभरकर बुलंदियों को छूती हुई समाज से अलग हटकर 'एक अकेली' स्त्री के परिवार की अवधारणा को साबित करती है ।प्रभा पुरुष - प्रधान समाज में एक विवाहित पुरुष से भावनात्मक स्तर पर जुडकर ठगी गई, इस कड़वे सच को निगलते हुए वह इस रिश्ते को अंत तक निभाती हुई अपने ही निर्णय पर अडिग रही ।समाज इस साबुत स्त्री को नेस्तनाबूत करने के तरीके को अपनाने से भी परहेज नहीं करता ।इन प्रतिकूल परिस्थितियों ने प्रभा को पंगु बनाने के बजाय उनके मनसूबे को बुलंद किया और समाज के चाबुक से लहूलुहान हुई डॉ. प्रभा खेतान अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती हुई व्यवसाय के लिए चुनौती बनती है। उन्होंने दुनिया के हर कोने में बिलखती स्त्री के चित्र को उकेरकर इस सच्चाई को उद्घाटित किया है कि व्यवस्था हर कहीं स्त्री के प्रति निष्ठुर रहा है।

भारतीय समाज में लड़के की चाहत इस कदर हावी है कि लड़की के जन्मते ही या तो उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है या हाशिये पर धकेल दिया जाता है और वह दर - दर की ठोकरें खाने को विवश है। प्रभा की माँ में भी यह चाहत इस कदर हावी थी कि प्रभा के जन्मते ही उन्होंने उसे अपने से परे कर दिया। माँ के प्यार से वंचित प्रभा अपने ही घर में एक यतीम की तरह पलती रही। वह एक पराई स्त्री दाई माँ के घूँटे के सहारे बँधी रही। प्रभा परिवार में अपनों के ही द्वारा रौंदी गई, कुचली गई। अपने ही बड़े भाई के हवस की शिकार हुई। पवित्रता और कौमार्य मिथक से जकड़े समाज ने स्त्री को हमेशा चुप रहने की सलाह दी है। यहाँ भी यही हुआ दाई माँ द्वारा प्रभा को खामोश रहने की सलाह दी गई, नहीं तो माँ प्रभा को ही अपराधी घोषित कर परिवार से बेदखल कर देती या तो फिर इसका असर उसके भविष्य पर पड़ता स्त्री की सुरक्षा का दावा करते समाज के खोखलेपन की ओर लेखिका इशारा करती है।

स्त्रियों के साथ बरते जाने वाले भेदभाव, सामाजिक धारणा एवं कुरीति के पीछे शास्त्र एवं पुराणों के प्रसंग जुड़े हुए होते हैं, जो संबंधित कुरीति को सामाजिक मान्यता प्रदान करने के साथ - साथ प्रतिष्ठा भी दिलाते हैं। मनु संहिता के अनुसार रजस्वला होने से पूर्व बच्ची के विवाह की धारणा समाज में बलवती है, इसी वजह से साढ़े दस की उम्र में ही प्रभा के रजस्वला हो जाने से माँ टोकती है, अपवित्र होने की वजह से पिता की वार्षिकी के दिन सुबह से लेकर शाम तक उसे बरामदे में बन्द रहना पड़ता है ।तब प्रभा का मन चीत्कार कर उठता है । ऐसे हालातों ने उन्हें चिन्दियों में बिखेरने के बजाय उन्हें मज़बूत बनाया और स्त्री की आँसू भरी नियति को न स्वीकारने की वे शपथ लेती हैं।

प्रभा ने समाज के घेरे का अतिक्रमण कर अपने नज़रिए से अपनी ज़िन्दगी को जिया, जीवन में अपने ही मूल्यों को गढ़ने का प्रयास किया। उन्होंने बगावत की शुरु आत अपने घर से ही की जिसके कारण संपन्न घराने में जन्मी प्रभा खेतान को पैसों का मोहताज होना पड़ा ।इसके बावजूद भी उन्होंने अपनों के सामने घुटने नहीं टेके, हाथ नहीं पसारे एक के बाद एक चुनाव करती रही। उनकी जिन्दगी में

ऐसा ही चुनाव था बाईस की उम्र में डॉक्टर सर्राफ से जुड़ना जो कि एक विवाहित पुरुष और पाँच बच्चों के पिता थे । उनका यह चुनाव समाज के लिए नापाक होते हुए भी उनके लिए सही था, माना वह क्षणों की कमजोरी थी, एक भूल थी मगर अपनी इस भूल को अपराध कैसे मान लूँ? क्या ऐसा कभी घटता नहीं? विवाहित व्यक्ति से एक कुंआरी लड़की कभी प्रेम नहीं करती। हमने आखिर ऐसा अनोखा क्या किया था? जिस दिन हम मिले थे, उस क्षण भी न जाने कितने - कितने लोग इस दुनिया में आपस में मिल रहे थे, वादा कर रहे थे, साथ - साथ जीवन निभाने का वादा"[2] दूसरी औरत की भूमिका को स्वीकार कर उन्होंने समाज (पितृसत्ता) द्वारा स्थापित विवाह संस्था की धज्जियाँ उडाई। वे पूरी निष्ठा के साथ डॉक्टर सर्राफ और उनके परिवार के प्रति समर्पित रही।

समाज में स्त्री हमेशा देह के घेरे में ही कैद रही है। देह ही उसकी एकमात्र पहचान थी और संपत्ति, जिसका इस्तेमाल पुरुष जैसे चाहे कर सकता था। उसकी गिनती कभी भी मनुष्य श्रेणी में नहीं की गई। इस सच्चाई का खुलासा आत्मकथा में कैथी करती है - "प्रभा, औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर- गरीब का सवाल उठा रही हो? तुम मुझे राष्ट्र का भेद समझा रही हो? माई स्वीट हार्ट! हम सब औरतें अर्ध -मानव हैं। पहले व्यक्तितो बनो उसके बाद बात करना"[3] अमेरिका में रहते हुए प्रभा ने भारत एवं विदेश में उपभोक्ता संस्कृति के चंगुल में फंसती चली जा रही स्त्री को देखा, देह को निखारने की उनकी मंशा को करीब से जाना ।बचपन से ही प्रभा ने अपने देह को निखारने के बजाय अपने व्यक्तित्त्व को निखारने का निर्णय लिया, समाज द्वारा निर्धारित भूमिकाओं से परे जाकर मानवीय पहचान को हासिल करने की कोशिश की। इसके लिए उन्होंने निर्यात व्यवसाय का चुनाव किया। व्यावसायिक जगत में कदम रखते ही आत्मविश्वास से लबरेस प्रभा ने परंपरा का लबादा उतार फेंका। वे कलकत्ता चैम्बर ऑफ कॉमर्स की पहली महिला अध्यक्ष चुनी गई। इंडिया टुडे में इस सफल महिला की तस्वीर भी छपी थी। प्रभा ने अपना दुःखड़ा रोने के बजाय अपने चुनाव एवं निर्णय से खुद को समाज की मुख्यधारा से जोड़ा।

बहरहाल 'अन्या से अनन्या' एक स्त्री द्वारा खुद को समाज की मुख्यधारा से जुड़ने की दास्तान को बयान करता है। स्त्री के प्रति निर्मम समाज प्रभा के प्रति भी निर्मम रहा है। उसे अपाहिज बनाये रखने के तमाम रास्ते ईजाद किये जाने के बावजूद प्रभा द्वारा समाज को मात खानी ही पड़ी। एक स्त्री द्वारा अपने इरादों को साकार करने की, वस्तु (देह) से परे जाकर मनुष्य बनने की विजय गाथा है 'अन्या से अनन्या'।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. प्रभा खेतान -स्त्री उपेक्षिता -पृः- 117
2. प्रभा खेतान - अन्या से अनन्या- पृः-9
3. वही - पृः- 157

सहायक आचार्य
सेंट स्टीफेंस कॉलेज,उषवूर
कोट्टयम, करेला - 686634

परशुराम शुक्ल की लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ : एक अध्ययन

हुमैरा यूसुफ़

लोक साहित्य का तात्पर्य जनमानस के साहित्य से है। इसमें जनमानस की सहज अभिव्यक्ति होती है। इसका लेखक अज्ञात होता है। यह साहित्य जनमानस के मनोरंजनार्थ रचा जाता है। "लोक-साहित्य किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होता है। डॉ. परशुराम शुक्ल लिखते हैं ; लोक साहित्य समाज की अमूल्य धरोहर होती हैं। प्रत्येक लोक साहित्य में उस समय की रूढ़ियों, प्रथाओं, जनरीतियों, परम्पराओं, सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, विचारों आदि की झलक होती है, जिनमें इनका जन्म होता है। इस प्रकार लोक साहित्य को संस्कृति का संरक्षक कहा जा सकता है।"[1] लोक साहित्य कई शताब्दियों से मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को आगे हस्तांतरित होता रहा है। लिपि के आविष्कार के बाद इस साहित्य का लिखित रूप में भी प्रकाशन आरम्भ हुआ है जिससे इनका मूल रूप सुरक्षित रखने में सहायता हुई है। लोक साहित्य को समूह की कृति माना जाता है। लोक साहित्य का महत्व इसलिए भी है कि इसमें मनोरंजन, नैतिक शिक्षा तो होती ही है साथ में लोक साहित्य की सहायता से किसी समाज की संस्कृति को सरलता से समझा जा सकता है। लोक साहित्य में लोक गीत, लोक कथाएँ, लोक नाट्य, लोक नृत्य, लोक वाद्य आदि आ जाते हैं, यहाँ पर हम लोक कथाओं को लेकर चर्चा कर रहे है।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध पत्र में मुख्य रूप से विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है तथा आधारित पुस्तकों के रूप में मोघिया कथाएँ, नाग केसर, लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ, वृक्ष उत्पत्ति कथा, विमुक्तजातियों की लोककथाएँ का आश्रय लिया गया, इंटरनेट पर विषय सम्बंधित सामग्री का भी अध्ययन किया गया है।

मूल शब्द : लोक साहित्य, लोक कहानियाँ, लोक कथा, मोघिया जनजाति, विमुक्त जाति, संस्कृति, अंधविश्वश, नैतिक शिक्षा, मनोरंजन, पंचायत आदि।

प्रस्तावना : परशुराम शुक्ल एक बहुत चर्चित समकालीन बाल साहित्य रचनाकार है। उन्होंने बाल उपन्यास, बाल कहानियाँ, बाल एकांकी, बाल धारावाहिक आदि की रचना कर बाल साहित्य में अपना अमूल्य योगदान दिया है और अभी भी इस कार्य में संलगन हैं। अपने साहित्य लेखन में उन्होंने लोक कथा लेखन और लोक कथाओं के संकलन में विशेष रु चि ली है। उनके पांच लोक कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनके नाम हैं मोघिया कथाएँ(2014), लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ(2015), वृक्ष उत्पत्ति कथा(2018), नाग केसर(2019), विमुक्तजातियों की लोककथाएँ(2021)।

लोक कथाओं के इतिहास पर दृष्टि की जाए तो इसका इतिहास उतना ही पुराना है जितना मानव का इस पृथ्वी पर निवास का है। लोक कथाओं और मनुष्य का आदिम युग से ही घनिष्ठ संबंध है। मानव ने जब बोली सीखी होगी तभी से लोक साहित्य का जन्म माना जा सकता है। वह वनों में रहते थे, शिकार करते थे और रात को गुफाओं में विश्राम करते थे। अपने विश्राम के क्षणों में वह अपने दिनचर्या और अनुभव एक दूसरे को सुना देते थे। धीरे-धीरे इसमें कल्पना, हास्य, रोचकता, जुड़ती गईं और कथा का जनम हुआ होगा। इनमें कुछ कथाएँ इतनी रोचक रही कि एक व्यक्ति सुनता तो दूसरे तक पहुंचाता, वह आगे किसी को सुनाता इस प्रकार से जाने-अनजाने में लोक कथा का जन्म और विकास हुआ। ये लोक कथाएँ कई पीढ़ियों तक मौखिक रूप से परम्परा रूप में चलती रहीं, कथाएँ जुड़ती गई और लोक साहित्य में वृद्धि हुई।

परशुराम शुक्ल लिखते हैं- "लोक कथाएँ सार्वभौमिक होती हैं। ये विश्व के सभी भागों में पाई जाती हैं। विश्व का शायद ही कोई ऐसा भाग हो, जहाँ लोक कथाएँ प्रचलित ना हो। इसका प्रमुख कारण मानव की लगभग एक जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ हैं।"[2] लोक कथाओं में मनोरंजन, नैतिक शिक्षा, सरलता, सहजता, रोचकता आदि कई गुण पाए जाते हैं। इसमें कल्पना का प्रयोग होता है। कथाओं के पात्र प्रायः मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, पौधे, फूल, आकाश, बादल, राजा, रानी, देवी, दानव, परी, जल परी, विलक्षण विशेषताओं वाले अन्य जीव आदि, या कोई निर्जीव वस्तु भी हो सकती है। पशु, पक्षी, वृक्ष, पौधे, फूल आदि को मनुष्य के जैसे बातें करते और कार्य करते दिखाया जाता है।

लोक कथाएँ अपने क्षेत्र विशेष की संस्कृति, रीति-रिवाज, लोक-व्यवहार, रूढ़ियाँ, त्योहार और जन-जातियों की वाहक होती है। अतः आज पूरे विश्व में लोक-कथाओं को सुरक्षित रखने के प्रयास किए जा रहे हैं। विश्व की अधिकांश लोककथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है। यही कारण है कि आज भी अधिकांश लोककथाएँ बाल कथाओं के समान बच्चों में लोकप्रिय है। इसके साथ लोक कथाएँ ही बाल कथाओं का आरंभिक स्वरूप है। श्री शुक्ल जो एक चर्चित बाल साहित्यकार हैं और बाल साहित्य, बाल नाटक, बाल कहानियाँ आदि की रचना की है। उनका लोक साहित्य लेखन तो स्वाभाविक ही था। श्री शुक्ल ने लोक कथाओं पर आधारित कई बाल कहानियों का लेखन किया है। इसके साथ ही उन्होंने विभिन्न जातियों से सम्बन्धित लोक कथाओं को एकत्रित कर उनका प्रकाशन भी कराया है। लोक कथाओं पर उनके पांच कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनके नाम उपर दिए गाए है।

मोघिया कथाएँ : इस कहानी संग्राम में कुल चालीस लोककथाएँ संग्रहित की गई हैं। इस संग्रह का प्रकाशन 2014.ई में हुआ है । इसमें मोघिया विमुक्त जनजाति की लोककथाएँ दी गई हैं। पुस्तक की भूमिका में मोघिया पर चर्चा करते हुए श्री शुक्ल लिखते हैं- "मोघिया भी एक घुमंतू जनजाति है। इसे मूँग, मोगी, मोगिया आदि नामों से जाना जाता है। उत्तर प्रदेश में मोघियों को बहेलिया कहा जाता है। इनकी संवैधानिक स्थिति भी अलग-अलग प्रान्तों में अलग-अलग है। मध्यप्रदेश सरकार ने इन्हें अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा विमुक्तजाति तीन सूचियों में रखा है तथा विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत वह इनका विकास कर रही है। किन्तु उत्तरप्रदेश सरकार इन्हें अनुसूचित जाति मानती है। यद्यपि उसने इन्हें विमुक्त जाति की श्रेणी में शामिल किया है।"[3]

मोघिया कथाएँ:संग्रह में मोघिया जनजाति की लोक कथाओं को श्री शुक्ल ने एकत्रित कर उनका प्रकाशन कराया है। यह लोक कथाएँ मोघिया के रीति- रिवाज, संस्कृति, खानपान, न्याय व्यवस्था, विवाह आदि को दर्शाती है। इन कहानियों को श्री शुक्ल ने मोघिया लोगों के बीच रहकर उन लोगों से इकट्ठी की है। संग्रह की भूमिका में श्री शुक्ल मोघिया जनजाति से संबंधित एक प्रथा पर लिखते हैं, वहाँ विवाहित स्त्रियों के उलाक (लहंगा, घाघरा) को सर्वाधिक अपवित्र मानते है जिस के स्पर्श मात्र से आदमी या वस्तुएँ अपवित्र या उलाक हो जाती है। इस कारण उनकी विवाहित स्त्रियाँ टूल-कुर्सी आदि पर कभी नहीं बेठ सकती। उनकी ऐसी अनेक प्रथाओं और अंधविश्वासों को श्री शुक्ल ने संग्रह में बताया है।

'मोघिया कथाएँ' संग्रह में 40 लोककथाएँ है, यह सभी कहानियाँ छोटी-छोटी हैं। संग्रह में पहली मोघिया की अपनी भाषा में कथा दी गई है उसके बाद इनका हिन्दी अनुवाद भी दिया गया है- इन सब कहानियों में उद्देश्य स्पष्ट दिया गया है। कथाओं के शीर्षक भी सामान्य जन जीवन से संबंधित है जैसे-लडानहारो मानषो/लड़ाई करने वाला आदमी,पंचनो हुक्को/पाँच का हुक्का, अक्कल होरा गोल्या/बुद्धिमान लड़का, मटटीनो चूल्हा/मिट्टी का बर्तन, आपना षेतल्डाउना बीज/अपने खेत का बीज, जेहू करषो तेहू भरषो/जैसी करनी वैसी भरनी आदि। लोक कथाओं के पात्र अनाम राजा, रानी, राजकुमार, राजकुमारी, साधु, सन्यासी, कंजूस, कपटी, चालक आदमी, पक्षी, वृक्ष आदि है।

'मोघिया कथाएँ' संग्रह की सभी कथाएँ रोचक, मनोरंजक और सोद्देश्यपरक है जैसे- 'बुद्धिमान लड़का' कथा में एक लड़के की बुद्धिमानी बताई गई है, कैसे वह सौतेली माँ से स्वयं को और अपने पिता के प्राणों की रक्षा करता है। 'मिट्टी का बर्तन' कहानी के अंत में निष्कर्ष बताया गया है- "यह सच है कि जो मनुष्य अपनी बात को जगह-जगह कहता फिरता है, उसकी कोई इज्जत नहीं होती।"[4] 'बुद्धिमान मंत्री' कथा में राजा का बुद्धिमान मंत्री एक दमड़ी के सवा लाख एक दिन में बना लेता है। 'मूर्ख राजा' में मोती नामक गधे की मौत के पीछे राजा, नगर सेठ, छोटे सेठ सभी ने सिर मुंडवा दिया। 'भूत के बाल' कहानी में लापरवाही के दुष्परिणाम दिखाए गए है, इस तरह चालीस अलग-अलग कथाओं में भिन्न-भिन्न विषयों को लिया गया हैं।

ये कथाएँ बच्चों के पढ़ने के लिये उचित है, क्योंकि इन कहानियों में मनोरंजन है, कहानियाँ छोटी हैं तो बच्चों को उब पैदा नहीं होती और वह सारी कहानी पढ़ जाते है जैसे- मिट्टी का बर्तन, दो भिखारी आदि कुछ कहानियाँ एक पन्ने की कहानियाँ हैं। कहानियों की भाषा सरल है। कोई लागलपेट भाषा का नहीं पाया जाता है भूत के बाल कथा का यह अंश देखे- "बच्चा भूत के बहलाने पर बाल उठा लाया बालों की चोटी भूत ने जैसे ही अपने सिर पर लगाई वह अपने असली रूप में आ गया। फिर उसने शिकारी के बच्चों व आसपास जो भी थे सबको खाया और चल दिया।"[5] कहानियों के पात्र अनाम राजा, रानी, बूढ़ा, पंच, स्त्री आदि है, जो कि बच्चों को बड़ी आसानी से याद रह जाता है।

लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ; यह श्री शुक्ल का दूसरा लोक कथाओं का कहानी संग्रह है। कहानी संग्रह का प्रकाशन वर्ष 2015.ई.में विवेक पब्लिशिंग हाउस जयपुर से हुआ है। इस संग्रह में कुल बारह लो कि कहानियाँ संकलित है, कहानियों के नाम हैं- स्वर्ग के महारथी, देवी का विश्वास, हुलुंग तांत्रिक और भैरवी, दुष्ट साधु का अंत, इच्छाधारी नाग, धोखेबाज जादूगरनी, मूर्ख साधु और ढोंगी तांत्रिक, वासी का सपना, शंकर पार्वती का न्याय, नाग देवता का क्रोध, भैरवी और तान्त्रिक की टक्कर, ब्रह्मदत्त का हृदय परिवर्तन। इन कथाओं के विषय में डॉ. परशुराम शुक्ल कहते हैं- "इन सभी लोक कथाओं में मूल कथा या बहुत छोटी सी लघु कथा के समान है। इसे रोचक, आकर्षक और बालोपयोगी बनाने का कार्य मैंने अपनी कल्पना से किया है।"[6] इससे स्पष्ट हो जाता है कि डॉक्टर शुक्ल ने जो लोक कथाएँ ली है उनमें अपनी ओर से घटनाएं जोड़कर उन्हें बाल उपयोगी बनया है।

आरम्भ में लोक कथाओं का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन ही होता था। लोग एक दूसरे का मनोरंजन करने के लिए लोककथाएँ सुनते और सुनाते थे। कल्पना पर आधारित होने के कारण लोक कथाओं से सभी का मनोरंजन होता था। इनमें कही उड़ने वाली पारियों की कल्पना होती थी तो कही वृक्ष के समान उँचे राक्षसों की। लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ संग्रह की लोककथाएँ पूरी तरह इस उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर चुकी है। कथाओं के घटनाक्रम, पात्र, आदि बालकों और पाठकों का मनोरंजन करती है। पाठक सारी कथा पढ़ने पर विवश हो जाता है। कथाओं में मनोरंजन की चाशनी में बच्चों को नैतिक शिक्षा दी गयी है जैसे- 'शंकर और पार्वती का न्याय' कहानी में पार्वती का न्याय दिखाया गया है कि वे किस प्रकार एक माँ की सहायता करती है, जिसका बेटा एक माह बाद साधु के शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त होना होता है। 'नाग देवता का क्रोध' कहानी में लापरवाही के कुपरिणाम दिखाए गए है। 'भैरवी और तान्त्रिक की टक्कर' कहानी में लालच का दुष्परिणाम दिखाया गया है। 'देवी का विश्वास' में स्वयं पर विश्वास हो तो कार्य में सफल होने से हमें कोई नहीं रोक सकता। 'हुलुंग तांत्रिक और भैरवी' में किसी अनजान पर विश्वास करके कोई काम नहीं करना चाहिए। हमें अपनी उपलब्धियों और ताक़त का दुरु पयोग नहीं करना चाहिए यह 'दुष्ट साधु का अंत' कहानी के माध्यम से बताया गया है, ऐसे अनेक शिक्षा और ज्ञान की बातें इन लोक कथाओं के माध्यम से देने का लेखक ने प्रयास किया है, जिनमें वे सफल भी रहे हैं।

वृक्ष उत्पत्ति कथा: लोक कथाओं पर आधारित श्री शुक्ल का तीसरा कहानी संग्रह है- वृक्ष उत्पत्ति कथा इस संग्रह का प्रकाशन 2018.ई. में हुआ है। आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद, मध्यप्रदेश भोपाल से इसका प्रकाशन हुआ है। अशोक मिश्र इस पुस्तक के सम्पादक है। कहानी संग्रह में कुल सोलह कहानियाँ हैं। यह सभी कथाएँ वृक्षों की उत्पत्ति संबंधित मिथ कथाएँ है। इनमें कल्पना का पूरा प्रयोग किया गया है। यूँ तो साहित्य की प्रतेक विधा में कल्पना की प्रधानता होती है, किन्तु लोक साहित्य में कल्पना की बहुत उँची उड़ान देखने को मिलती है। 'वृक्ष उत्पत्ति कथा' में हवा में उड़ने वाली परियाँ, वृक्षों के समान उँचे देव-दानव, आदमी को तोता बनाने वाले जादूगर, अनेक सिर वाले साँप, ऋषि का वृक्ष बनना, बच्चे का शाप के कारण वृक्ष बनना, किसी देवी चमत्कार से वृक्ष की उत्पत्ति, मानव के समान बातें करने वाले वृक्ष और पशु-पक्षी आदि इस तरह की काल्पनिक घटनाएँ देखने को मिलती हैं।

कहानी संग्रह के संपादक श्री अशोक मिश्र पुस्तक के बारे में लिखते हैं- "प्रस्तुत पुस्तक में वृक्ष और फूलों की उत्पत्ति संबंधी कथाओं को प्रकाशित किया जा रहा है। मनोवांछित की पूर्ति तथा बड़ी से बड़ी समस्या के समाधान में वृक्षों की भूमिका को कथाओं में अभिव्यक्तकिया गया है।"[7]

कहानी संग्रह 'वृक्ष उत्पत्ति कथा' में पात्रों और कहानियों के विषय में स्वयं शुक्ल जी कहते हैं- "इन कथाओं के पात्र राजा, रानी, राजकुमार, देव-दानव, जादूगर जैसे रोचक पात्र हैं। ये पात्र और इनके व्यवहार कथा-पाठकों में कथा के प्रति रुचि और आकर्षण उत्पन्न करते हैं। इससे पाठक पूरी कथा अवश्य पढ़ता है। इसके साथ ही इन कथाओं में वृक्ष की संरचना, उनके औषधीय गुण अथवा अन्य किसी महत्त्व को देखा जा सकता है। इससे इनका महत्त्व और बढ़ जाता है।"[8] उदाहरण के लिए 'चमत्कारी वृक्ष' में अशोक की उत्पत्ति संबंधित कथा में राजा और उसकी दो रानियों की कहनी है। पुरानी रानी की बेटी क्रोध में एक वृक्ष को लात मारती है, जिससे एक चमत्कार हो जाता है और अशोक के वृक्ष पर फूल आ जाते हैं। अशोक के वृक्ष के विभिन्न अंगों से अनेक प्रकार के स्त्री रोगों की औषधियाँ

तैयार की जाती हैं। यह स्त्रियों के लिए अत्यंत उपयोगी है। इस कथा में इसका भी संकेत दिया गया है। 'शिवभक्तराजा' कथा में चंदन वृक्ष की उत्पत्ति और उसकी शीतलता पहुँचने वाले तत्व की ओर संकेत किया गाया है। स्वर्ग के महारथी में खजूर, सुपारी, ताड़ आदि लंबे वृक्षों की मिथ कथा है। 'दुष्ट साधु का अंत' में साजा वृक्ष की उत्पत्ति कथा है। 'पराक्रमी दैत्य' कथा में दैत्यराज से ऋषियों-मुनियों की रक्षा के लिए माता पार्वती क्षत-विक्षत शवों से लंबे-चौड़े और खोखले वृक्ष बनती है और इस तरह इन खोखले वृक्षों की उत्पत्ति बताई गई हैं। इस तरह इसमें सोलह प्रकार के वृक्षों की कथाएं दी गई। यह सब कथाएँ रोचक भी है और ज्ञानवर्धक भी जो इन वृक्षों की उपयोग्यता भी बताते है। यह कथाएँ बच्चों के लिए ही लिखी गई है।

श्री शुक्ल का एक अन्य लोक कथा संग्रह है 'नाग केसर' है, इस संग्रह का प्रकाशन 2019.ई. में हुआ है। इसमें फूलों की उत्पत्ति सम्बन्धी मिथ कथाएँ है। श्री शुक्ल लिखते हैं- "मैंने भारत की पूर्व-अपराधी जनजातियों पर लम्बे समय तक शोध कार्य किया है। राजकीय पुष्पों पर पुस्तकें तैयार करते समय इन से सम्बन्धित पुस्तकों पर अध्ययन करने के साथ ही मैंने विभिन्न जनजातियों के लोगों से इनकी उत्पत्ति संबंधी मिथकों और प्रचलित लोक कथाओं पर भी चर्चा की। जनजातियों के पास लोक साहित्य का परिमित भंडार है। इनसे मुझे अधिकांश राजकीय पुष्पों की उत्पत्ति सम्बन्धी रोचक मिथ कथाएँ प्राप्त हुई। मैंने इन कथाओं को अपने ढंग से तैयार किया और एक पुस्तक बन गई।"[9]

खुशबू बनाने की प्रक्रिया के प्रयोग में फूलों का विशेष महत्त्व है। फूल किसी भी स्थान, भवन को सुशोभित करने के काम आते हैं। फूल को देखने मात्र से हम प्रसन्न हो जाता है। भगवान पर फूलों की वर्षा की जाती है, मज़ारों पर फूलों की चादर बिछाई जाती है। फूलों से कई उपयोगी औषधियाँ भी बनाई जाती है। फूलों के गहने, फूलों का श्रृंगार, इत्यादि ऐसे कई प्रकार से फूल मानव जीवन से जुड़े होते हैं। धर्म और आस्था में भी कई फूलों का महत्व माना जाता है। 'नाग केसर' लोक कथा संग्रह में श्री शुक्ल ने पुष्पों की उत्पत्ति सम्बंधित मिथ कथाओं का संकलन किया है और कुछ कहानियों में स्वयं की कल्पना पर घटनाएं जोड़कर बाल उपयोगी बनाई है। श्री शुक्ल के शब्दों में-"पुष्पों की उत्पत्ति सम्बन्धी मिथ कथाओं में ये पात्र थे तथा घटनाएं भी बच्चों का मनोरंजन करने वाली थी। अतः मैंने इन्हें बाल कहानियों में बदलने का निश्चय किया। कुछ कथाओं में प्रेम और काम सम्बन्धी प्रसंग थे। मैंने इन्हें अलग कर दिया और कुछ रोचक घटनाएं जोड़ दी। फूलों की उत्पत्ति सम्बन्धी मिथ कथाएँ में सभी कथाओं को उनके मूल रू प में सम्मिलित किया गया है।"[10]

इस संग्रह में सोलह पुष्पों की उत्पत्ति सम्बन्धी कथाएँ दी गई है। इन कथाओं की एक प्रमुख विशेषता है कि इसकी सभी कथाओं में ऐसे विवरण देखने को मिलते है जो पेड़-पौधों में वास्तव में पाए जाते है। उदाहरण के लिए कुलगुरु का चमत्कार कथा में एक लालची राजा अपनी कन्या को विश्कन्या बना देता है दूसरे देश के राजा को छल से मारने के लिए पर उनके कुलगुरु सही समय पे आकर उन्हें बचा लेते है और विश कन्या बनी राजकुमारी को कंधल बना दिया। कंधल के सभी अंग फूल, पत्तियाँ, जड़ आदि विषैले होते है। कमल, लेडीस्लिपर, लोमड़ी पुच्छ, ब्रह्मकमल, अमलतास, पलास, आदि पुष्पों उत्पत्ति सम्बन्धी कथाओं में भी ऐसे विवरण मिल जाते है जो उन के गुणों को भी बताते हैं।

विमुक्तजातियों की लोक कथाएँ : डॉ. परशुराम शुक्ल की लोक कथाओं पर आधारित पांचवीं पुस्तक है। इस कहानी संग्रह में कुल तेईस कहानियाँ हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 2021.ई. है। पुस्तक के संपादक हैं- श्री अशोक मिश्रा। इस पुस्तक की सभी कथाएँ बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद है। इसके साथ ही गांव के रहन-सहन, पर्व-त्योहार, न्याय-व्यवस्था की जानकारी भी कहानियाँ देती है। परशुराम शुक्ल ने विमुक्तजातियों पर बहुत काम किया है। वे कहते हैं- "मैंने भारत की पूर्व अपराधी जनजातियों पर बहुत काम किया है। इनके संपर्क में मैं छात्र जीवन से था। मेरे जीवन का एक बड़ा भाग रेल बाजार में बीता। वहाँ गुलाब बाई का घर था। यहीं पर मेरा परिचय इन जनजातियों से हुआ।"[10] यह शुक्ल जी का इन जनजातियों से प्रथम परिचय था, इसके बाद बुंदेलखंड कॉलेज, झाँसी में कबूतरा नामक पूर्व अपराधी जनजाति से उनका परिचय हुआ यह लोग देशी शराब बनाते है। धीरे-धीरे अन्य विमुक्तजातियों से भी उनका परिचय हुआ और उन्होंने उनके ऊपर अपना शोध आरंभ किया।

भारत एक विशाल देश है, यहाँ पर विविध जातियाँ पाई जाती हैं। शुक्ल- "यहाँ पर सैंकड़ों की संख्या में नट, कंजर, कुचबंदिया, हबूड़ा, कलंदर, सांसी, वाघरी, मीना, बदक, भांतु, बावरिया,सनौरिया, बिजौरिया, भाट, बेडिया, चपरमंगता,

लुंगीपठान, करवल, सिकलीगर, आदि अनेक ऐसी जातियाँ पाई जाती है जो बंजारों की तरह जीवन व्यतीत करते हुए इधर-उधर भटकते रहते हैं। प्रत्येक जाति के अलग-अलग पेशे हैं। कुछ जातियों के लोग बंदर या भालू का नाच दिखाते हैं तो कुछ भेड़, बकरी, गाय आदि चराने का कार्य करते हैं। कुछ जड़ी-बूटियों का धंधा करते हैं तो कुछ गीत गाकर भिक्षा माँगते हैं। इनकी स्त्रियाँ अपने घरों में रस्सियाँ, टोकरीयाँ, पंखा, चटाई आदि बनाने का कार्य करती हैं। इनमें एक जाती भैंसे चुराती है, यह खेत से फसलें चोरी भी करते हैं। ब्रिटिश सरकार ने इनको खतरनाक समझकर 1871.ई. में अपराधी जनजाती बताकर इन पर बहुत से प्रतिबंध लगा दिए थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1952.ई. को इन्हें भारत सरकार द्वारा मुक्तकरार दिया गया और यह विमुक्तजातियाँ कहलाने लगी।"[11] श्री शुक्ल ने अपने लोक कथा संग्रह- 'विमुक्त जातियों की लोक कथाएँ' में इन्हीं विमुक्तजातियों की लोक कथाओं को इस संग्रह में संकलित करने का कार्य किया है। इसमें कुछ कथाएँ उन्होंने विमुख जनजातियों से संपर्क रखने वाले लोगों से प्राप्त की है- जैसे ड? भावना दासगुप्ता जिनके खेत इन जनजातियों के पास थे, गुलाब बाई जिनसे बाल्यावस्था में इनका परिचय रहा तथा स्वयं शुक्लजी ने इन जातियों के लोगों के बीच रहकर उन से कथाएँ एकत्रित की है। श्री शुक्ल ने पूर्व अपराधी जाति पर चार शोध पुस्तकें भी तैयार की है।

कहानी संग्रह की बात करें तो इस की भूमिका में श्री शुक्ल लिखते हैं- विमुक्तजाति में दो प्रकार की लोककथाएँ प्रचलित है। पहली न्याय पंचायत की लोककथाएँ तथा दूसरी- बच्चों को रात्रि में सोते समय सुनाई जाने वाली लोककथाएँ। पहले प्रकार की कथाएं ज्ञानवर्धन के लिए हैं। इस पुस्तक में दोनों प्रकार की लोक कथाओं का संकलन किया गया है। 12 इन कहानियों में कोई समस्या आ जाती है। किसी का झगड़ा हो जाता है, जिसके लिए वह पंचायत बिठा लेते है झगड़ा हल करने के लिए। कहानियाँ बच्चों को शिक्षा देने के लिए उपयोगी है जैसे- कौन बड़ा है कहानी मित्रता को आदमी का अहम कैसे खराब करता है, ये दिखाया गया है। करनी का फल में बुरे कर्म का बुरा फल दिखाया गया। तीन मूर्ख में तीन भाइयों की मूर्खता की कथा दी गई है। मिट्टी का बर्तन में न्याय करने में देरी नहीं करनी चाहिए यह बताया गया है। इस तरह संग्रह की सारी कहानियाँ सामाजिक उपयोगिता व बाल उपयोगिता की कही जा सकती है। लकड़ी का संदूक कहानी में एक गरीब किसान के चार सिक्के एक अमीर सेठ दबा लेता है, पंचायत बिठाई जाती है जो बहुत दिन तक चलती है तब एक पंच अपनी बुद्धिमानी से उस गरीब को न्याय दिलवाता है ऐसी अनेक रोचक कहानियाँ इस संग्रह में दी गई हैं।

निष्कर्ष :- लोक कथाओं पर सम्भवतः श्री शुक्ल जितना कार्य अन्य किसी बाल साहित्य रचनाकार का नहीं है। श्री शुक्ल की लोककथाओं पर आधारित कहानी संग्रहों की ओर दृष्टि डाले पर पता चलता है की इन लोक कथाओं का संकलन श्री शुक्ल ने विभन्न जातियों और समुदायों के लोगों से सुनी कहानियों के रूप में किया है और कुछ को उनकी स्वयं की कल्पना से रची गई है, कुछ में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर उनमें घटनाएं जोड़ दी गई है। यह कथाएँ इन समुदाय के लोगों की लोककथाओं को सुरक्षित रखेगी और एक धरोहर के रूप में सुरक्षित रखेगी। उन्होंने लोक कथाओं की रचना बच्चों के लिए की है। यह कहानियाँ बच्चों का मनोरंजन करती है उन्हें नैतिकता सिखाती है, विभिन्न सीख सिखाती है। कल्पना का प्रयोग बच्चों की कल्पना शक्ति बडाने का काम करती है। साथ ही इन कहानियों में बच्चें विभिन्न पशु-पक्षी, पशु-पक्षी आदि से परिचित होते है। श्री शुक्ल के इस महत्वपूर्ण योगदान की जितनी सराहना की जाए कम ही होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची;-

1. शुक्ल परशुराम. लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ, विवेक पब्लिशिंग हाउस जयपुर, संस्करण- 2015, पृष्ट. 6
2. वही, पृष्ट. 11
3. शुक्ल परशुराम. मोघिया कथाएँ, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, संस्करण- 2014, पृष्ट. 10
4. वही, पृष्ट. 30
5. वही, पृष्ट. 38
6. शुक्ल परशुराम. लोक कथाओं पर आधारित बाल कहानियाँ, विवेक पब्लिशिंग हाउस जयपुर, संस्करण- 2015, पृष्ट. 8
7. शुक्ल परशुराम. वृक्ष उत्पत्ति कथा, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, संस्करण- 2018, पृष्ट. 5
8. वही, पृष्ट. 8, 9
9. शुक्ल परशुराम. नाग केसर आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, संस्करण- 2019, पृष्ट. 7
10. वही, पृष्ट. 7, 8
11. शुक्ल परशुराम. विमुक्त जातियों की लोक कथाएँ, आदिवासी लोक कला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद भोपाल, संस्करण- 2021, पृष्ट. 9
12. वही, पृष्ट. 16

शोधार्थी, यूनिवर्सिटी ऑफ़ कश्मीर दरगाह
हज़रतबल, श्रीनगर

आत्मकथा

देवयानम्

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

ग्यारहवीं देवपद - अनुसंधान क्षेत्र

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

केरल विश्वविद्यालय के मलयालम विभाग में अनुसंधान करने के लिए मैं भर्ती हो गया। उस समय विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे प्रोफेसर श्री सामुवल मत्ताई। मेरे आचार्य डॉ.नारायण पिल्लैजी थे। प्राच्य संकाय (Oriental Faculty) के अध्यक्ष भी वे ही थे। उसी अवसर पर विश्वविद्यालय के पंजीयक (Registrar) थे श्री.ए.एम.एन. चाक्यार जिन्होंने "अंतिम स्मार्त विचार" नामक ग्रंथ की रचना की थी। श्री पी.के.नायर, श्री के नारायण तम्पी जैसे प्रमुख व्यक्तित्व सिंटिकेट के सदस्य थे। संस्कृत एवं मलयालम दोनों विभागों को मिला कर एक ही अध्यक्ष के अधीन कर लिया गया था। हमारे आचार्य डॉ.नारायण पिल्लै के उपदेश के अनुसार मैंने अपना शोध प्रबंध मलयालम भाषा में ही लिख कर समर्पित किया था जो विश्वविद्यालय के नियम के विरुद्ध था। तब तक मलयालम भाषा साहित्य के शोध-प्रबंध अंग्रेजी में लिखे जाते थे। पीएच.डी और एम.लिट् - अपने ये दोनों शोध प्रबंध मैंने मलयालम भाषा में ही लिखा था। एम.लिट् के लिए मेरा विषय था "श्रीमद् भागवत् पर आधृत तुल्लल कथाएँ : मौलिकता का अध्ययन" और यह प्रबंध बाद में "तुल्लल : एक अध्ययन" नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित भी हो गया था। सुप्रसिद्ध समालोचक प्रोफेसर जोसफ मुण्डश्शेरी मेरे परीक्षक थे जिन्होंने इस प्रबंध की बड़ी प्रशंसा की थी।

जब मैं शोध कार्य कर रहा था तब सरकार के जनसंपर्क विभाग में अनुवादक के पद पर अपनी नियुक्ति हो गई थी। वहाँ साहित्य के बडे बडे आचार्यों से मिलने एवं निकटता स्थापित करने के अनेक मौके मुझे मिले थे। उनमें प्रमुख थे श्री जी. विवेकानंदन, श्री.एन. मोहन, श्री जी.एन. पणिक्कर आदि।

इसी बीच भारत-पाकिस्तान-संग्राम चल रहा था। राजधानी के पुत्तरीक्कण्डम नामक सुप्रसिद्ध विशाल मैदान में इकट्ठे नागरिकों को संबोधित कर मुख्यमंत्री श्री.आर.शंकर ने देश-सुरक्षा का प्रण सुनाया और लोगों ने बड़े आवेग में कण्ठ से कण्ठ मिलाकर उसे दोहराया। यह प्रण अंग्रेज़ी में लिखा गया था जिसका मैंने मलयालम में भाषांतरण किया था। 1963 को विवेकानंद स्वामी के जन्म-शती-समारोह से प्रेरणा पाकर मैंने "युगाचार्य" नामक पुस्तक की रचना की थी। यह ग्रंथ कॉलेज में पढ़ाया जाता था।

दो साल तक सरकारी नौकरी करने के बाद (Probation Period) मैंने वहाँ से छुट्टी ली और विश्वविद्यालय लौट जाकर अपना शोध कार्य ज़ारी रखा। 1967 को मुझे एम.लिट की उपाधि दी गई थी बाद में मैंने अपनी पीएच.डी भी की जिसका विषय

था "कुंचन नंपियार और उनकी कृतियाँ।" (श्री कुंचन नंपियार केरल के लोकनृत्य "ओट्टन तुल्लल" के उपज्ञाता हैं। इस कला में संगीत नृत्य एवं अभिनय का सम्यक समन्वय होता है।) इन कृतियों का अध्ययन करते समय सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री मावेलिक्करा प्रभाकर वर्मा के साथ मेरी मित्रता हो गई थी जो तिरुवनंतपुरम के संगीत कॉलेज के अध्यापक थे।

श्री नंपियार की संगीत एवं नृत्य प्रधान रचनाओं का अध्ययन करते समय मैंने अपनी दृष्टि उन्हीं पर सीमित रखना नहीं चाहती; बल्कि भारत की दूसरी विशिष्ट कलाओं एवं उनके सौंदर्यशास्त्र का भी अध्ययन किया था। इसके लिए देश की प्रमुख संस्थाओं में जाकर वहाँ के आचार्यों के साथ मैंने चर्चाएँ की थीं। इस प्रकार साहित्य की विविध शाखाओं के अध्ययन-मनन के साथ ही देश की सौंदर्यात्मक कलाओं की गहराईयों में डूब कर अवाच्य आनंद की अनुभूति भी मुझे मिली थी। भारत की उदात्त कला-संस्कृति का एक उज्ज्वल क्षितिज मेरे सम्मुख खोला गया था।

1967 को नाटक साहित्य से संबंधित एक कार्यशाला शास्तामकोट्टा (कोल्लम जिला) के देवस्वम बॉर्ड कॉलेज में आयोजित की गई थी जिसमें लब्धप्रतिष्ठ अनेक नाटककारों ने भाग लिया था। श्री जी.शंकर पिल्लै, श्री.सी.एन. श्रीकंठन नायर, श्री अय्यप्पा पणिक्कर और श्री.एम.गोविंदन के नेतृत्व में यह कार्यशाला अत्यंत प्रयोजनीय तथा सफल हो गई थी। उसमें भाग लेते हुए संस्कृत के "स्वप्नवासवदत्तं" नामक विख्यात नाटक के बारे में मैंने भी भाषण दिया था। "अरङ्गु 1968" (Stage 1968) नामक ग्रंथ का प्रकाशन भी इसके साथ हो गया था जिसमें मेरी ग्रंथ सूची "मलयाळम नाटक: 1880 - 1980" भी स्वीकृत की गई थी।

अपने अनुसंधान कार्य से संबंधित हो मलयालम साहित्य क्षेत्र के उन्नत शीर्ष आचार्यों, अध्यापकों एवं रचयिताओं से मिलने के लिए बहुत से मौके मुझे मिली थी। उनमें प्रमुख थे श्री प्रोफसर सी.एल. आन्टणी, श्री ई.के.नारायण पोट्टी, श्री.पी.सी.देवस्या, श्री पुत्तन काविल मात्तन तराकन इत्यादि। डॉ.पी.के.नारायण पिल्लै की अध्यक्षता में विभाग में साहित्यकारों के अनेक योग भी हुआ करते थे।

1968 को तृश्शूर के सुप्रसिद्ध श्री केरलवर्मा कॉलेज में एम.ए. की पढ़ाई शुरू होनेवाला था तो वहाँ के मलयालम विभाग का अध्यक्ष प्रेफसर नारायण पोट्टी ने मुझे बुलाया। निमानुसार साक्षात्कार (Interview) आदि के बाद मेरी नियुक्ति वहाँ हो गई।

महाकवि वल्लत्तोल का कोई काव्यांश अब मुझे याद आ रही है।

"झिलमिल करते सपने सुहाने अपने
क्षितिज पर पश्चिम।"....

(निर्वाण मण्डल शीर्षक कविता से) (क्रमशः)

आत्मकथा

ज़िंदगी : एक लोलक

मूल : श्रीकुमारन तंपी

अनुवाद : डॉ.पी.जे.शिवकुमार

यो मां प्रयतते हन्तुम्
ज्ञात्वा प्रहरणे बलम्
तस्य तस्मिन प्रहरणे
पुनः प्रादुर्भवाम्यहम्

(एक व्यक्ति बली होने के कारण मेरा नाश करने के लिए तैयार हो जाय,तो मैं तब उसके प्रहार के उपर से ही फिर पनप कर आउँगा -महाभारत)

पागल सी चीखती आषाढ़ की हवा ।मेघ गर्जन और बिजली। सब कुछ तहस - नहस करने के लिए आक्रोश के साथ बरसती मुसलाधार वर्षा। समय आधी रात बीत चुकी थी। करिम्पालेत्तु नाम से हरिप्पाट्टु गांव में और आस पास के प्रदेशों में कीर्ति प्राप्त हमारी हवेली, वर्षा के दयाहीन जीवंत नृत्य देख कर चौंकते हुए खड़ी है। अत्यंत विशाल अगवाडा,बहुत लंबे पूरब का बरामदा,प्रांगण, रसोई घर, रसोई घर का अगुवाडा, हवेली के उत्तर स्थित आंगन में पराजय स्वीकार करके झुककर खड़ी ओखली कुटी, अनेक दिनों से कुछ भी न किये बिना 'कैसी दुविधा है' कहकर निःशब्द विलाप करती ओखलियाँ और मूसल। सब वर्षा और हवा का आघात लग कर थक चुके हैं। बाहर ही नहीं अंदर भी पानी बरस रहा है ।

बड़ा सा घर होते हुए भी नारियल के पत्तों से छवायी की गई है।आषाढ़ की वर्षा शुरू होने से पहले घर की छवायी करनी चाहिए थी। घर की अच्छी तरह छवायी करने के लिए तीन हजार तना नारियल के पत्ते चाहिए। साढे सैंतीस सेंट की भूमि पर तीस से ज़्यादा नारियल के पेड़ हैं। उन पेड़ों के पत्तों को रसोई घर और आंगन की अंगीठी जलाने और रात में यात्रा करते समय प्रकाश देने वाले मशाल बनाने के लिए इस्तेमाल करते हैं ।शेष पत्तों को पिरोकर और बांधकर घर के उत्तरी ढलान के दीवार पर खड़ा कर रखना, बाहर के काम करने वाले रामन, पत्नी एवं उनके पुत्र वासू का काम है। भोर होते ही पहुँचनेवाले रामन और पत्नी माँ द्वारा दिए जाने वाले रात का खाना खाकर ही लौंटेंगे। रामन की जात का नाम लगाकर ही पुकारा जाता है। रामन की पत्नी को जात का नाम मात्र है। उस स्त्री का और कोई नाम था, यह भी मैं नहीं जानता। आंगन में झाड़ू लगाकर सफाई करना, नारियल के पत्तों को गूँथना उस बूढ़ी स्त्री का काम था। नारियल के पेड़ को खाद देना, माताजी की तरकारी की कृषि में सहायता देने का नाम रामन का है। वासु अन्य घरों में भी काम के लिए जायेगा। काम न मिलने के दिनों में वह करिंपालेत्तु पर आएगा। रामन की बेटी नाषि चेन्नित्तला के पतिदेव के घर से रूढ़कर आते समय वह भी माता-पिता की सहायता करने के लिए हमारे घर आती है। कम चौड़ाई की सिर्फ एक धोती ही रामन का पहनावा है। रामन की पत्नी का पहनावा भी वही है। वह छाती ढकती नहीं थी। वह आँगन झाड़ू से सफाई करते समय उसके स्तन शून्य दो 'मडिश्शीला' (पैसा रखने का साधन) के समान हिल जाएँगे। पर उसकी बेटी नाणी रौक्का पहनकर छाती ओढती थी। आज का ब्रेज़ियर और ब्लाउज़ एक बन जाने से उत्पन्न एक रूप है राउक्का। (क्रमशः)

विविध जिलों में सुगमा हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण समारोह के दृश्य

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-08-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

AUGUST 2024

Vol. No. 61, Issue No.05
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

विविध जिलों में सुगमा हिन्दी परीक्षा पुरस्कार वितरण समारोह के दृश्य

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam